Photo by D. I. Chanthamian

पुरस्कृत
परिचयोक्ति

वक्रदेही

प्रेषक
ग. द. पर्वतीकर, हैद्राबाद

चन्दामामा

विषय-सूची

*

इनके अलावा मन बहलाने वाले सुन्दर चित्र और कई प्रकार के तमाशे हैं।

बिड़ला
कटेली चम्पा
केश तैल
अनुपम गन्ध
एवं केश शोभा
केलिये

वीर-बच्चा
बच्चों की ताकत के लिये
अनुपम टानिक
VEER BACHHA
बिड़ला लेबोरेटरीज़, कलकत्ता २०

ग्राहकों को एक जरूरी सूचना

*

१. ग्राहकों को पत्र-व्यवहार में अपनी ग्राहक-संख्या का उल्लेख अवश्य करना चाहिए। जिन पत्रों में ग्राहक-संख्या का उल्लेख न हो उन पर कोई ध्यान नहीं दिया जा सकता।

२. पता बदल जाने पर तुरन्त नए पते के साथ सूचना देनी चाहिए।

३. प्रति नहीं पाई तो १०-वीं के पहले ही सूचित कर देना चाहिए। बाद को आने वाली शिकायतों पर कोई ध्यान नहीं दिया जाएगा।

—व्यवस्थापक, 'चन्दामामा'

Flawless
फूलों-सी कान्ति : इतनी मुलायम, इतनी साफ़,
इतनी मोहक कान्ति देने वाली और कोई नहीं।
AFGHAN SNOW
Leading Beauty Cream of the East
AFGHAN SNOW
ESP
Patanwala
FOR PERFUMES & COSMETICS
CS

चन्दामामा
संचालक :
चक्रपाणी
नई सज-धज के साथ जा रहा चन्दामामा
का यह नव-वर्षांक और उधर प्रकृति में
नया वर्षा का समां। इधर रसीली-कहानियाँ,
मनचले चुटकुले, फड़कते गीत और उधर
जमीन और आसमान को एक करने वाली
रिम-झिम वर्षा! चारों तरफ कितनी सुहावनी,
कितनी खुशियाली, और कैसी हरियाली!
कितने ही पाठक मनचले इस नव-वर्षा में उछलते-
कूदते शौक से भीगते होंगे, कितने लबालब-भरे
नदी-तालाबों में तैर रहे होंगे और कितने बाग-बाड़ी
में नए-नए पौधे लगा रहे होंगे। ऐसे समय
हम पाठकों के हाथों में चन्दामामा रख रहे हैं।
वर्ष : सितम्बर 1953 : अङ्क
5 1

सच्चा साथी

एक दफ़ा एक अमीर के था, पास में सुनो,
एक नीगरो गुलाम वफ़ादार भी था जो।
छाया समान फिरता वह मालिक के साथ साथ,
चाहे, सुबह या शाम हो दिन होवे या कि रात।

पूछा किसी ने एक दिन यह उस अमीर से।
क्यों आप को गुलाम यह इतना पसन्द है?
गम्भीर होके तब यह कहा उस अमीर ने,
एक दफ़ा की है बात सुनो तुम यह ध्यान से।
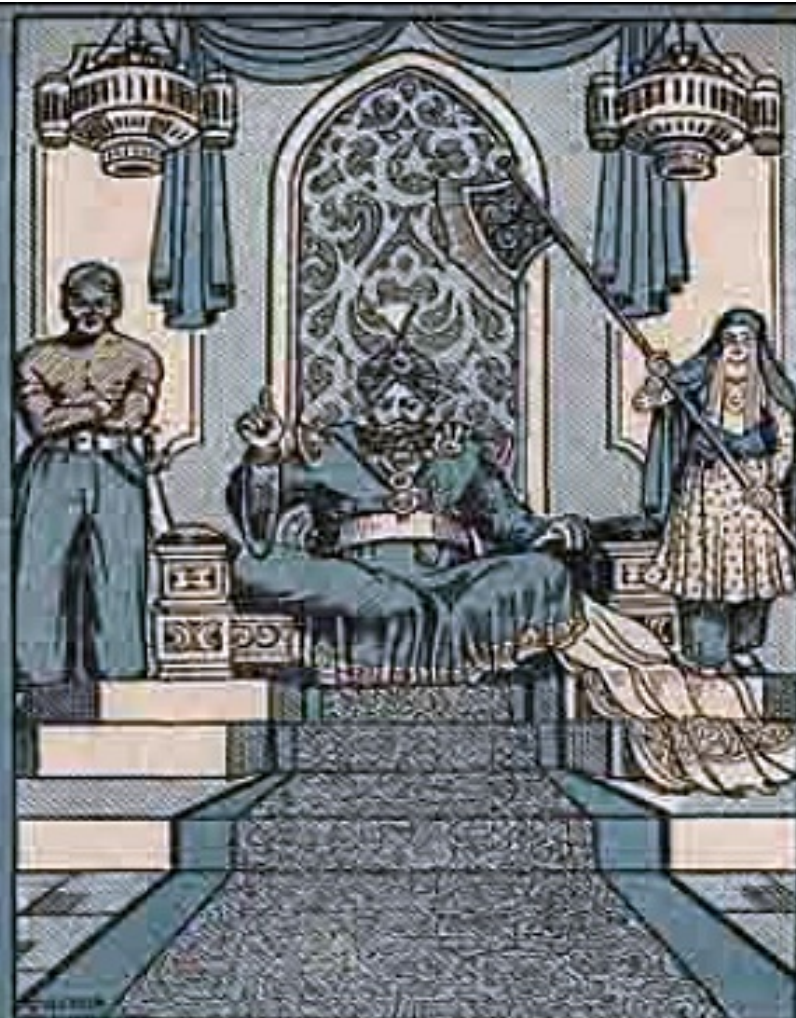
बाहर से आ रहा था कहीं अपने गाँव से,
सामान भी था साथ और कुछ आदमी भी थे।
एक ऊँट चलते-चलते अचानक जो गिर पड़ा,
सामान उस पे जो था वह धरती पे आ रहा।

हीरे जवाहरात जो थे सब बिखर गए,
तेज़ी से फिर हवा-का वे आ दूर पर गिरे।
यह देख उनसे बोला मैं-जाओ इधर उधर,
मोती उसी के होंगे जो, लाए जो ढूँढ कर।

तब सुनके मेरी बात हर इक दौड़ने लगा,
कोई इधर गया था तो कोई उधर गया।
कोई भी मेरे पास नहीं रह गया वहाँ;
है कौन जिसको धन का नहीं लोभ हो यहाँ।

* * *

गर पैसा पास में है तो मन चाहे सो करो,
जितने गुलाम चाहे यहां पर खरीद लो ।
लेकिन कठिन है बात बहुत याद यह रखो,
साथी का ऐसे मिलना कि दिल जिसका साफ हो ।

किस्सा यह जब सुनाया उन्हें उस अमीर ने,
हैरान हो हर एक लगा मुंह को देखने ।
काला कलूटा था तो यों वह मोंगरो गुलाम
पर जम गया जबान पे हर एककी उसका नाम ।

पास रह जो गया था—मेरे यह गुलाम ही,
चट्टान जैसे पत्थर की – होवे कोई सखी ।
पूछा यह मैंने उस से बताओ तो यह मुझे,
इन मोतियों से बढ़के और चाहिए क्या तुझे !

'दिया जवाब उसने यह तब खूब सोच कर,
बस, आप की दया ही रहे मेरे हाल पर ।
साथ आप के हमेशा हंसी और खुशी रहे,
रंज इसका कुछ नहीं जो भुला भी-दें मुझे ।'

भोली सी उसकी बात ने दिल जीत ही लिया ।
इतनी खुशी हुई कि मैं झूम ही गया ।
ऐसा गुलाम जो किसी मालिक के साथ हो,
खतरा कभी न आए है फिर उसके पास तो ।

काशी में जब ब्रह्मदत्त का राज्य था, तब भगवान बोधिसत्व एक बार एक मरघट में कुत्ते के रूप में जन्मे और सैकड़ों की संख्या वाले एक श्वान-दल के अगुआ हो गए।

एक दिन राजा सफ़ेद घोड़ों की बग्गी पर चढ़ कर सैर करने निकला और सूरज डूबते-डूबते किले में वापस आ गया।

वापस आने के बाद राजा तो किले में चला गया और नौकरों ने घोड़ों को खोल कर बग्गी वहीं बाहर छोड़ दी। रात में पानी बरसा और बग्गी बिलकुल भीग गई। यही नहीं, राज-महल के कुत्ते निकले और बग्गी में लगे चमड़े के सभी सामान नोच-चोंथ कर खा गए।

दूसरे दिन बग्गी वालों ने राजा से शिकायत की—'हुजूर, रात में कुत्ते आए और बग्गी के सारे सामान खा गए।'

नौकरों की यह बात सुनते ही राजा गुस्से से भर गया और बोला—'ये कुत्ते बड़े अभागे हैं—जहाँ दीख पड़ें, मार डालो।'

राजा का हुक्म होते ही सारे काशी-राज्य में कुत्तों की हत्या शुरू हो गई। जहाँ-कहीं कुत्ते दीख पड़ते, चण्डाल उन्हें निर्दयता से मार डालते थे।

कुत्तों की यह सामूहिक हत्या देख कर राज्य के बचे-खुचे कुत्ते मरघट में भगवान बोधिसत्व के पास जमा हुए।

कुत्तों का जमाव देख कर बोधिसत्व ने बड़ी आतुरता से पूछा—'क्या है भाई—तुम लोग यों दौड़ कर क्यों जमा हुए हो यहाँ?'

'भगवान, अब और क्या है! हमारी जाति के नाश की घड़ी आन पहुँची है। राजा की बग्गी की रास-जोती कुछ कुत्ते

सोम प्रकाश

खा गए हैं। यह सुनते ही गुस्से से आगबगूला होकर राजा ने कुत्तों के नाश की आज्ञा दे दी है।'—कुत्तों ने निवेदन किया।

तब बोधिसत्व ने ऐसा सोचा—'बाहर के कुत्ते तो किसी प्रकार राज-महल में घुस नहीं सकते। क्योंकि वहां तो रात दिन पहरा पड़ता ही रहता है। फिर राज-महल के कुत्तों के सिवा यह काम और कौन कर सकता है? यही बात ठीक है! जिन कुत्तों ने यह अपराध किया, वे तो मजे में हैं; पर हमारे ये निर्दोष कुत्ते बिना कारण ही मारे जा रहे हैं। अब चुप रहने से काम कैसे चलेगा? अपराधी कुत्तों का पता लगा कर राजा को समझाना और उस से इन्साफ कराना जरूरी है। नहीं तो व्यर्थ ही हमारी जाति का नाश हो जाएगा।'

यों सोच कर बोधिसत्व ने अपने भाइयों से कहा—

'भाइयो, तुम लोग जरा भी मत डरो। तुम सबों की रक्षा का भार अब मेरे ऊपर है। मैं राजा के पास जाता हूँ। मेरे आने तक तुम लोग यहां रहना।'

अपने दल को समझा-बुझा कर बोधिसत्व सोचता हुआ चल पड़ा—'धर्म की जय हो! राजा न्याय से राज्य करे!'

यों एक कुत्ते को राज-महल में जाते देख कर भी किसी पहरेदार ने उसे एक ढेला उठा कर नहीं मारा और न गुस्सा ही किया।

वहां—

कुत्तों की हत्या का फर्मान निकाल कर राजा राज-सभा में आया और न्यायासन पर विराजमान हो गया। उसी समय राजा के सिंहासन के नीचे से निकल कर कुत्ता-

रूप-धारी बोधिसत्व राजा के सामने खड़ा हो गया। यह देख कर राजा के नौकर उस कुत्ते को पकड़ने दौड़े। लेकिन राजा ने उन्हें रोक दिया।

बोधिसत्व राजा को प्रणाम करके बोला—'आपने ही कुत्तों को मार डालने का हुक्म दिया है!'

'हाँ, मैंने ही हुक्म दिया है।'—राजा ने जवाब दिया।

'महाराज, उनका अपराध क्या है?'

'कुत्तों ने हमारी बग्गी के सामान खा डाले हैं।'

'क्या आप उन कुत्तों का पता बता सकते हैं?'—बोधिसत्व ने फिर नम्रता से पूछा।

'नहीं, सो तो मैं नहीं जानता!'—राजा ने संकोच से कहा।

तब बोधिसत्व ने गम्भीर होकर पूछा—'जब अपराधियों का पता नहीं है, तब निरापराधों की हत्या करना क्या उचित है? क्या यही धर्म है?'

राजा ने कहा 'मेरी बग्गी के सामान नष्ट हो गए। इसीलिए मैंने वैसा हुक्म दिया है।'

बोधिसत्व ने फिर पूछा—'महाराज, तो आपके नौकर सभी कुत्तों को मार डालेंगे या कुछ को छोड़ेंगे भी?'

'नहीं, सभी को नहीं मारेंगे। राज-महल के उत्तम कुत्तों पर वे हाथ नहीं लगाएँगे।'—राजा ने जवाब दिया।

इस पर बोधिसत्व यों बोला—'महाराज, अभी तो आपने कहा कि सभी कुत्तों के नाश का हुक्म दिया है। फिर राज-महल के कुत्तों के प्रति आपका यह पक्षपात क्यों? इससे तो साफ़ जाहिर होता है कि आपमें चार दुर्गुण भरे हैं—'पक्षपात, द्वेष, अविवेक तथा भय। ये तो राजा के लक्षण कभी नहीं हो सकते। इन्साफ़ करने वाले हाकिम

को निष्पक्ष होना चाहिए। लेकिन आप की आज्ञा से राज महल के कुत्ते सुरक्षित हैं और दूसरे कुत्तों की अंधा-धुन्द हत्या हो रही है। यह तो न्याय नहीं हो सकता। सुनिए—'आकाश-वाणी भी हो रही है—'राज-महल के कुत्ते भूख से तड़प रहे हैं। और ये निर्दोष कुत्ते मारे जा रहे हैं! राजा, यही तुम्हारा इन्साफ़ है? क्या यही तुम्हारा धर्म है?'

यह सुनते ही राजा के हृदय में एक उथल-पुथल होने लगी। उसने बोधिसत्व से कहा—'क्या अपनी बुद्धि-चातुरी से तुम अपराधी कुत्तों का पता लगा सकते हो?'

इस पर बोधिसत्व ने कहा—'पता बताना क्या मुश्किल है! राज-महल के उत्तम जातिवाले कुत्तों ने ही यह काम किया है—दूसरे किसी ने नहीं।'

'यह क्या कहते हो!'—चिढ़ कर राजा बोला।

'जरूरत पड़ने पर मैं इसे साबित भी कर सकता हूँ।'—बोधिसत्व ने दृढ़ता से कहा।

राजाने कहा—'अच्छा, साबित करो—देखें।'

"अच्छा, अपने कुत्तों को यहाँ मँगवाइए। मैं साबित कर देता हूँ अभी।"

राजाने राजमहल के कुत्तों को दरबार में लाने का आदेश दे दिया।

कुत्तों के आने पर बोधिसत्व ने फिर कहा—'अब थोड़ा मट्ठा और कुछ हरी दूब भी मँगवा लीजिए।'

छाँछ और हरी दूबें भी आ गईं। फिर बोधिसत्व के कहने से दूब मिला मट्ठा कुत्तों को थोड़ा-थोड़ा पीने दिया गया। बस, वह मट्ठा पीते ही कुत्तों को उल्टी होने लगी और उनके पेट से खाए हुए सभी

चमड़े के टुकड़े निकल आए। यह देख कर बोधिसत्व बोला—'देख लिया न महाराज ने! आपके नौकरों ने इन्हें खाना नहीं दिया था। इसी से इन्हें चमड़े खाने की जरूरत पड़ी।'

राजा आनन्द से उछल पड़ा। वह समझ गया कि कुत्ते के वेश में यह भगवान बोधिसत्व ही हैं। यह सोच कर वह उठा और उस कुत्ते को अपने सिंहासन पर बिठाकर अपना राज-मुकुट उसके माथे पर रख दिया। सारी सभा उस कुत्ते के सामने नत-सिर हो गई।

फिर बोधिसत्व ने राजनीति के ऊपर राजा को अनेक उपदेश दिए।

बोधिसत्व के उपदेश से राजा का हृदय ऐसा बदला कि वह अपने राज्य के सभी जीवों पर समभाव से दया दिखाने लगा। राजमहल से लेकर दूर देहात तथा जङ्गल-पहाड़ों तक उसकी दया फैल उठी। उसके राज्य में कहीं हत्या नहीं हो सकती थी। कोई कहीं चोरी नहीं करता था। कहीं झगड़े-फसाद नहीं होते थे। राजा का इन्साफ ऐसा था, उसका इंतजाम ऐसा था कि कोई किसी को सता नहीं सकता था।

और कुत्ते के वेश में वह बोधिसत्व सारे राज्य में घूम-घूम कर धर्मोपदेश देता रहता था जिससे आदमी के दिल में दया, प्रेम, सहयोग आदि की भावनाएँ दिन-दिन बढ़ती जाती थीं।

यों कुत्ता-वेशधारी बोधिसत्व ने राजा और प्रजा दोनों के जीवन को धन्य बना कर युग-युग के लिए अपना नाम अमर बना लिया।
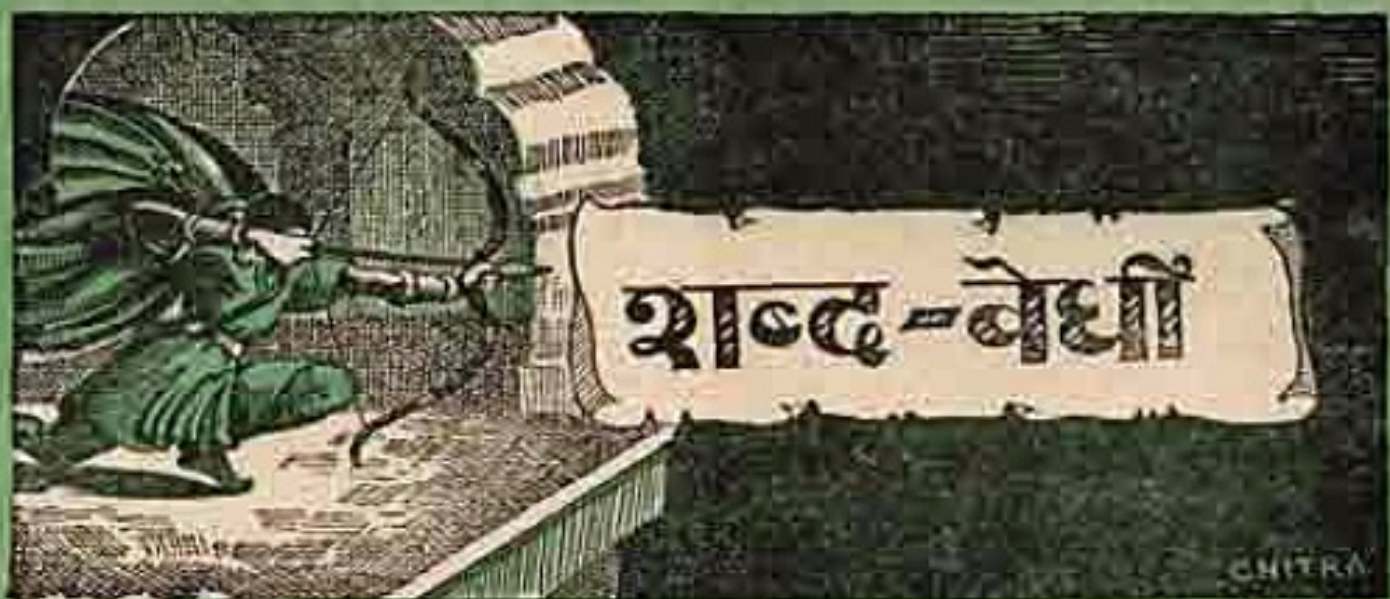
[चिट्ठी लेकर विजयवर्मा जब भीमवर्मा के पास से लौट रहा था, तब पुरुष-वेश में करुणा से इसकी भेंट हुई। युद्ध में भीमवर्मा का दल हार गया। भीमवर्मा वेश बदल कर भागा और किसी तरह अपनी जान बचाई। दुश्मनों की खूब बन आई। भीमवर्मा के आज्ञानुसार विजयवर्मा ने करुणा को गिरिदुर्ग में पहुंचा दिया। —आगे पढ़िए]

विजय वर्मा जब गिरिदुर्ग लौटा, तब देखा कि वहाँ की जनता एकदम निराशा में पड़ी हुई है। कारण था—युद्ध में हार और ऊपर से शब्द-वेधी की मार। फिर करुणाकर नहीं दीख पड़ा। पिता के मरने की बात विजय वर्मा के मन में घूम रही थी। तब उसने रामसिंह से पूछा। रामसिंह ने एक क्षण उसकी ओर तीव्र दृष्टि से देखा और फिर जवाब दिया—'मुझे इन बातों की कोई खबर नहीं। अच्छा यही है, कि तुम इन सब बातों में पड़ो ही नहीं। नहीं मानते हो, तो जाकर सोमशर्मा से पूछ देखो।' विजय वर्मा, बगैर कुछ जवाब दिए ही, चला गया। भीमवर्मा ने अपने सिपाहियों को ढाढ़स बँधाया और देव-दुर्गाधिपति को एक चिट्ठी लिख भेजी। उसके यों रङ्ग बदलने में कोई आश्चर्य नहीं था। क्योंकि यह तो उसकी आदत ही थी। विजयवर्मा सीधे सोमशर्मा के पास पहुँचा और वही सवाल उससे भी किया। सोमशर्मा ने कहा—'इसके पहले क्या मैंने इसका जवाब नहीं दिया था?' विजयवर्मा को इससे संतोष नहीं हुआ।

वह सोच ही रहा था कि किसी ने आवाज दी—'भीमवर्माजी बुला रहे हैं।'

विजयवर्मा ने जब वहाँ जाकर देखा कि भीमवर्मा चहल-कदमी कर रहा है। सोमशर्मा के सिवा और तीसरा व्यक्ति वहाँ नहीं था। विजयवर्मा सब कुछ ताड़ गया। उसने धीरे से कहा—'क्या आपने मुझे बुलाया है?'

'हाँ, जो मिलता है, उसी से तुम अंट-शंट सवाल करते रहते हो! मैंने तुम्हें पाल-पोस कर बड़ा बनाया, उसका यही प्रतिफल है न? तुम्हारी क्या बुराई की मैंने? औरस पुत्र से भी बढ़ कर तुम्हें देखता आ रहा हूँ।'—झुंझला कर भीमवर्मा बोल उठा।

विजयवर्मा ने दृढ़ता से जवाब दिया—'मैं कृतघ्न नहीं हूँ जो यह सब भूल जाऊँ। लेकिन पिताजी की मृत्यु के बारे में अनेक अफ़वाहें उड़ रही हैं। इनमें सच क्या है, जब तक यह मालूम नहीं हो, तब तक मुझे शान्ति नहीं मिल सकती।'

'अच्छा, तो सुनो—भगवान की कसम खाकर कहता हूँ। तुम्हारे पिता की मृत्यु के बारे में मैं कुछ नहीं जानता हूँ। मेरी बात पर विश्वास होता हो, तो अपना सन्देह मिटा दो। नहीं तो तुम भी जाकर मेरे दुश्मनों से मिल जाओ।'—विजयवर्मा का संदेह मिट गया। सुख की साँस छोड़ता वह सोमशर्मा की ओर मुड़ा।

लेकिन सोमशर्मा का मुँह एकदम फक हो रहा था—काटो तो खून नहीं। डरके मारे काँप रहा था। विजयवर्मा ने श्रद्धा से कहा—'अगर सोमशर्मा भी कसम खा लें, तो..........

भीमवर्मा ने सोत्साह कहा—'क्यों नहीं खाएंगे! बेकसूर को डर क्या? खाओ,

भाई, कसम खाओ।' लेकिन सोमशर्मा के मुँह से एक बात भी न निकली। डर से वह भीमवर्मा की ओर देखने लगा।

इतने में कहीं से एक तीर आया और तीनों जहाँ खड़े थे, उसके सामने की दीवार में चुभ कर, झूलने लग गया। देखते ही तीनों समझ गए कि यह शब्द-वेधी तीर है। पागलों की तरह चिल्ला कर सोमशर्मा गिर पड़ा। भीमवर्मा और विजयवर्मा दोनों दौड़े और खिड़की से झाँक कर देखने लगे। लेकिन किसी तरह की आहट नहीं सुन पड़ी। दूर के पेड़ों पर चिड़ियाँ ज्यों-की-त्यों चुपचाप बैठी हुई थीं।

राजमहल के दरवाजों पर पहरेदार खड़े थे। भीमवर्मा ने धीरे से कहा—'अच्छा, विजय, तुम अभी जाओ। सोमशर्मा कसम खाए बगैर रहेंगे कैसे! लेकिन तुम जरा सावधान रहना। यह सब से जरूरी बात है।' ऐसा कह कर भीमवर्मा ने विजयवर्मा को विदा कर दिया।

सोमशर्मा होश में आ रहा था। उसकी ओर देख कर भीमवर्मा बोला—'तुम्हारे कारण उसे फिर सन्देह हो आया है। आज रात को अगर तुम भी कसम खा लो, तो उसकी जान बच जाएगी। नहीं तो उसे भी पिता की राह जाना पड़ेगा। तुरन्त उसे पश्चिम वाले कमरे में हटा दो।'

'पश्चिम वाले कमरे में!' हकलाते हुए सोमशर्मा ने पूछा।

'हाँ, उसकी जान तुम्हारे हाथ में है। किसी तरह कसम खाकर उसे शान्त कर दोगे तो वह बच जाएगा। नहीं, तो बाप के साथ बेटे की हत्या भी तुम्हारे मत्थे मढ़ी जाएगी। बोलो—क्या चाहते हो?'

कुछ देर ठहर कर सोमशर्मा ने कहा—

उसकी जान बचाने के वास्ते जो भी कहना होगा, कह दूँगा।' 'बगल वाले कमरे में ही रहूँगा। जैसे बने, उसका संदेह मिटा दो।'—कह कर भीमवर्मा चला गया।

कुछ देर बाद विजयवर्मा फिर उस कमरे में आया। बेचारे सोमशर्मा का चेहरा पीला पड़ गया था। उसने सिर उठा कर देखा और विजयवर्मा का हाथ पकड़ कर निधड़क कह गया—'मैं भी कसम खा लूँ, तब तो तुम्हें संतोष होगा न? तो सुनो—भगवान को गवाह रख कर कहता हूँ। तुम्हारे पिता की मौत से मेरा कोई संबन्ध नहीं है। मैं कुछ भी नहीं जानता हूँ उसके बारे में।'

'अच्छी बात है। अगर आपका कोई संबन्ध नहीं तो और किसका है—यह बताइएगा?'—विजयवर्मा ने पूछा।

'मुझे कुछ भी मालूम नहीं।' कह कर अस्तव्यस्त होता सोमशर्मा वहाँ से चला गया।

कसम खाकर निर्दोषी सोमशर्मा को यों घबराए हुए जाते देख कर विजयवर्मा को ताज्जुब हुआ। उसने चारों तरफ़ नज़र दौड़ाई। सामने की खिड़की कुछ हिलती हुई-सी दीख पड़ी। किसी की आँखें चमकीं और क्षण-भर में ओझल हो गईं।

'हमारी बातचीत किसी ने सुन ली है'—विजयवर्मा को इसका दृढ़ निश्चय हो गया। यह सब एक जादू जान पड़ता है—छल-छंदसे भरा हुआ! उसने सोचा—'मैं मकड़ी के जाल में फँस गया हूँ।' झट करुणाकर की याद आ गई। 'मेरे कारण वह भी कहीं फँस गया होगा'—वह सोचने लगा।

विजयवर्मा जैसे ही कमरे से निकला कि एक पहरेदार ने आकर कहा—'आप को दूसरे कमरे में रहने का हुक्म हुआ है।'

'क्यों ! किस कमरे में !'

'पश्चिम वाले कमरे में।'

'कमरा कैसा है—अच्छा है न !'

'कमरा है, तो बहुत अच्छा पर उस में रहता है भूत।'—पहरेदार ने डरकर कहा।

शङ्कित मन से विजयवर्मा अपने नए कमरे की ओर बढ़ा। उस कमरे की ऊँचाई तो कम थी, पर वह लम्बा-चौड़ा काफी था। उस में एक बड़ा भारी पलङ्ग पड़ा था। कभी किसी बड़े आदमी का वह कमरा रहा होगा। यह सब देख कर विजयवर्मा का शक और बढ़ गया। उसने उसकी दीवारों तथा आलमारियों की जाँच-पड़ताल की। लेकिन कहीं कोई विशेषता उसे नहीं दिखाई दी।

'चोर-दरवाज़ा तो कहीं-न-कहीं होगा ही।' यों उसका संदेह बढ़ता ही गया। 'ऐसी जगह में आँखें बन्द करना खतरनाक है'—उसने सोचा। इतने में दरवाज़ा खट-खटाने की आवाज आई। पास पहुँचा और कान लगा कर सुनने लगा। कोई धीरे से कह रहा था—'दरवाज़ा खोलो।' आवाज़ पहचान कर विजयवर्मा ने तुरंत दरवाज़ा

खोल दिया। हाथ में कटारी लिए हुए करुणाकर अंदर आया।

'क्या-क्या हुआ ! किले में घुसने के बाद फिर तुम दीख ही नहीं पड़े !'—आतुर होकर विजयवर्मा ने पूछा।

'क्या हुआ, इससे अब क्या मतलब !—हम फिर से मिल तो गए। लेकिन तुम तुरंत यहाँ से भाग खड़े हो। सवेरा होते-होते तुम्हारी जान नहीं बचेगी। उनकी काना-फूसी मैंने अपने कानों सुनी है।' करुणाकर ने कहा।

इसके बाद दोनों चोर-दरवाज़ा ढूँढने

लगे। इतने में कमरे के बाहर पैरों की आहट हुई। दीप बुझा कर दोनों कोने में दुबक गए और देखने लगे। जहाँ सट कर वे बैठे थे, वहाँ की दीवार फटी और रोशनी अंदर आई। विजय और करुणाकर साँस रोके यह देख ही रहे थे कि भवन के बाहर हो-हल्ला सुन पड़ा। बस, वह चोर-दरवाज़ा बन्द हो गया। 'शायद यह अच्छा समय नहीं है' यह सोच कर हत्यारे चले गए।

बाहर का कोलाहल अब साफ़ सुन पड़ने लगा। कोई कह रहा था—'करुणा कहाँ गई—करुणा! खोजो—खोजो!'

विजयवर्मा ने कहा—'यह करुणा कौन है, भाई! क्या करुणाकर! तुम्हें भूल से वे लोग लड़की तो नहीं समझ रहे हैं!'

'शुरू में ही रुकावट आ खड़ी हुई। मुझे पकड़े बग़ैर ये नहीं रहेंगे। दरवाज़ा खोलो—मुझे जाने दो, विजय। मुझे पकड़ने में जब वे व्यस्त रहें, तब मौके से तुम भाग निकलना।' करुणाकर ने समझाया।

विजयवर्मा को अब सारी हालत मालूम हो गई। उसने कहा—'तुम करुणाकर नहीं—वही करुणा हो।'

करुणा चुपचाप खड़ी रह गई।

विजय फिर बोला—'अब भी कुछ आशा है। अगर अबकी सकुशल बच गए तो हमें कोई अलग नहीं कर सकेगा। और मरना ही हुआ, तो दोनों साथ मरेंगे।'

इतने में बाहर कुछ शब्द हुआ। फिर ज़ोर-ज़ोर से कोई दरवाज़ा पीटने लगा। दूसरे ही क्षण भीमवर्मा का कण्ठ सुन पड़ा—'दरवाज़ा खोलो, विजय। अन्दर कौन है, मुझे मालूम है। पागल मत बनो।'

यह सुनते ही दोनों साथी चोर-दरवाज़े की ओर लपके। ज्यों ही वे बाहर हुए कि दरवाज़ा टूटा।

दरवाज़े के बाहर, अन्धेरे पथ से जाते हुए, दोनों एक गुप्त स्थल में पहुँचे। आगे कोई रास्ता न देख कर वहीं रुक गए। उसी संकट-समय में करुणा ने अपनी कहानी कह सुनाई। 'वह एक जमींदार की बेटी है। बचपन में ही माता-पिता के मर जाने से वह चन्द्रदुर्गाधिपति के घर पाली-पोसी गई थी। दुष्ट भीमवर्मा ने उसे वहां से जबर्दस्ती मँगवा लिया और पुरुष-वेश में रहने को लाचार कर दिया।'

यह कहानी सुन कर विजयवर्मा का दिल पिघल गया। 'शरीर में साँस रहते मैं तुम्हें नहीं छोड़ूँगा।' उसने यह प्रतिज्ञा की। इतने में फिर पैरों की आहट सुन पड़ी। घूम कर देखा तो रामसिंह आ रहा था।

'यहीं हैं आप लोग! —सोचा था सो सच निकला।'—रामसिंह ने कहा।

विजयवर्मा ने चुपचाप कटारी निकाल ली।

रामसिंह बोला—'ठहरो, भले आदमी; भागने का कहीं रास्ता नहीं मिला! अच्छा, तो मैं रास्ता दिखाता हूँ।'

विजयवर्मा समझ गया कि रामसिंह भी उसका मित्र ही है। रामसिंह ने उसे वह गुप्त राह बता दी जिससे होकर भीमवर्मा का दूत गया था।

दीवार पर से एक पत्थर हटाते ही एक दरवाज़ा दीखा। शीघ्र ही भाग जाने की सलाह देकर रामसिंह चला गया।

विजयवर्मा और करुणा दोनों उसी रास्ते से चल कर किले की दीवार के पास पहुँचे। वहीं वह खिड़की थी जिस में से होकर भीमवर्मा का दूत कूदा था। रस्सी अब तक लटक रही थी। विजयवर्मा ने सोचा—'अब चिन्ता की कोई बात नहीं।'

इतने में पीछे से चिल्लाहट सुन पड़ी।

'करुणा, आ जाओ। अब देर करने से कोई फायदा नहीं।'—विजयवर्मा ने कहा।

लेकिन करुणा ने नीचे झाँका तो गहराई को देख कर थर-थर काँपने लग गई। इतने में भीमवर्मा के सिपाही पहुँच गए। 'अब चाहे जो हो'—सोच कर विजयवर्मा ने रस्सी पकड़ी और कूद पड़ा। ऊपर से तीर बरसने लगे। लेकिन उसकी परवाह किए बगैर वह खाई को पार कर गया। फिर घनी झाड़ियों में ओझल होकर निश्चिन्त चलने लगा।

कुछ दूर जाने पर शब्द-वेधी तीर का शिकार भीमवर्मा का वह निष्प्राण सिपाही दीख पड़ा। उसकी तलाशी लेने पर एक चिट्ठी निकली। उस से मालूम हुआ कि भीमवर्मा ने देवदुर्गाधिपति को युद्ध का संदेश भेजा है।

'समय पर यह चिट्ठी काम आएगी'—यह सोच कर विजयवर्मा ने चिट्ठी अपने पास रख ली। कुछ दूर जाने पर शब्द-वेधी तीर छोड़ने वालों का दलाधिपति भी दीख पड़ा। इस बार विजयवर्मा को उसके पास जाने में कोई संकोच नहीं हुआ। शब्द-वेधी चण्डीदास ने उसका हृदय से स्वागत करते कहा—'करुणा को छोड़ आना बड़ी बुद्धिमानी का काम हुआ है।'

फिर विजयवर्मा ने भीमवर्मा को एक चिट्ठी लिखी—

'तुम्हारी सारी करतूत मुझे मालूम हो गई। अब देख लेना—इसका क्या फल मिलता है तुम्हें!'

उस पत्र को पढ़ते ही भीमवर्मा के दाँत कटकटा उठे।

[अभी और है]

बड़ों के साझे का काम

आदमियों की बस्ती से बहुत दूर एक घना-बीहड़ जङ्गल था। एक दिन खड़ी दुपहरी की वेला थी। चिलचिलाती कड़ी धूप पड़ रही थी। उसी समय प्यास से घबरा कर, एक सियार अपनी मांद से बाहर निकला। थोड़ी दूर जाने पर उसे एक तलैया दीख पड़ी। वहाँ जाकर उसने पेट भर पानी पिया और फिर से वहीं एक पेड़ की छाया में वह लेट गया।

उसी समय एक भेड़िया भी वहाँ आ गया। सियार को देख कर उसे बड़ी खुशी हुई।

सियार साहसी और बहादुर तो नहीं होता, लेकिन चालाकी में वह बेजोड़ होता है।

भेड़िए ने कहा—'क्या भाई, आराम से लेटे हुए हो!........क्या आज खूब डट कर शिकार किया है?'

'शिकार नहीं, मेरा सिर! आग की तरह बरसने वाली इस तेज धूप के मारे तो मेरा कण्ठ सूख रहा है। फिर सैरो-शिकार की बात कैसी! और हम शिकार क्या खाक करेंगे—रोज मुर्गी खाते-खाते तो जीभ नीरस हो गई है!' मुँह बिचका कर सियार ने जवाब दिया।

यह सुनते ही भेड़िए को कुछ याद आ गया। उसने भी उसी निराशा के स्वर में कहा—'सच भाई सियार! तुम सोलह आने सही कहते हो। रोज हरिन और नन्हें मेमनों को खाते-खाते मेरी भी रुचि एकदम मर गई है!'

इतने में कहीं से एक चीता भी वहाँ आ धमका। उसको देखते ही सियार और भेड़िए उठ खड़े हुए, फिर अपनी-अपनी पूँछें झाड़ीं, कान फट-फटाए और अदब से सिर झुका कर चीते को नमस्कार किया।

वीरेन्द्रसिंह चौहान

हड्डियाँ भी चाभने को मिल पाती हैं! फिर हम क्या और हमारा शिकार क्या!'

'तुम लोगों को अचरज तो होगा सुन कर, पर बात है सच्ची। जङ्गली सूअरों और अरनों का मांस खाते-खाते मेरी जीभ रुखड़ी हो गई है! अरे भाई, खाना हो तो हाथी का मस्तक फाड़कर खाना चाहिए। उसी में जवाँ-मर्दी है।—कहो, क्या कहते हो तुम लोग—ठीक है न!'—घमण्ड से चीता बोला।

चीते की बात सुन कर सियार बड़ी आजिजी से कहने लगा—'मामूजी, आप सचमुच भगवान ही हैं। आपके आते ही हमारे सारे कष्ट दूर हो गए और आप को देखते ही एक अच्छी बात भी सूझ गई है। छोटी नहीं, वह एक बहुत बड़ी बात है, समझ रखिए।'

यह बात सुनते ही भेड़िए और चीते ने आतुरता से कहा—'क्या-क्या—जल्दी कह डालो वह बात।'

सुनते ही मुँह से पानी टपक पड़े, इस ढङ्ग से बोलते हुए सियार ने कहा—'सच, मामूजी और भाई साहेब की रुचि मर गई है, यह तो आइने की तरह साफ हो गया है। मेरी बात पूछने की जरूरत ही नहीं। ऐसी हालत

...किसी गहरी गप-शप में पड़े दीख पड़ते हो तुम दोनों साले-बहनोई। शायद कोई भारी-भरकम शिकार करने की बात सोची जा रही है।'—चीता बोला और वह भी वहीं एक पेड़ से सट कर बैठ गया।

सियार और भेड़िया मर्म-भरी निगाह से एक-दूसरे का मुँह देखने लगे।

इतने में सियार को कुछ सूझ गया और बड़ी नम्रता से बोल उठा—'मामूजी, आपके प्रताप और बल के सामने हम नाचीज़ों की क्या हस्ती! हमें क्या कभी धुल-धुल करते जङ्गली सूअरों का मांस सूँघने को भी मिल पाता है! क्या हमें कभी हाथी-से अरनों की

में चलें हम सिंह महाराज के पास और उनको साथ लेकर कोई मजे का शिकार करें।'

'बहुत अच्छी बात कही तुमने।'— भेड़िए और चीते ने एक स्वर से कहा। फिर तीनों उठे और सिंह के पास पहुँचे। बड़ी नम्रता से सिर झुका कर, सलाम करके फिर सब बातें कह सुनाईं। सब कुछ सुन कर सिंह ने मुस्कुराते हुए कहा—' बहुत अच्छा।'

सिंह को आगे करके तीनों उसी दुपहरी में हाथी की खोज में निकल पड़े। आगे-आगे अयाल डुलाता सिंह जा रहा था और उसके पीछे दुम डुलाते तीनों जा रहे थे।

सूरज डूबने तक चारों शिकारी जानवर घूमते ही रहे। लेकिन जिसकी आशा थी, वह हाथी उन्हें नहीं मिला। हाथी की बात क्या, उसका नामों निशान भी नहीं मिला। आखिर नौबत यहाँ तक पहुँची कि हाथी तो दूर रहा, कोई भी माँस मिल जाय तो पेट की आग शान्त हो! इतने में सामने से जाता एक हिरन दिखाई दिया। बस, चारों ने घेर कर उसे मार डाला। सियार ने बराबर-बराबर चार हिस्से कर दिए। भूख से व्याकुल हो रहे चीता और भेड़िया अपना-अपना हिस्सा खाने जा ही रहे थे कि सिंह गरज उठा—
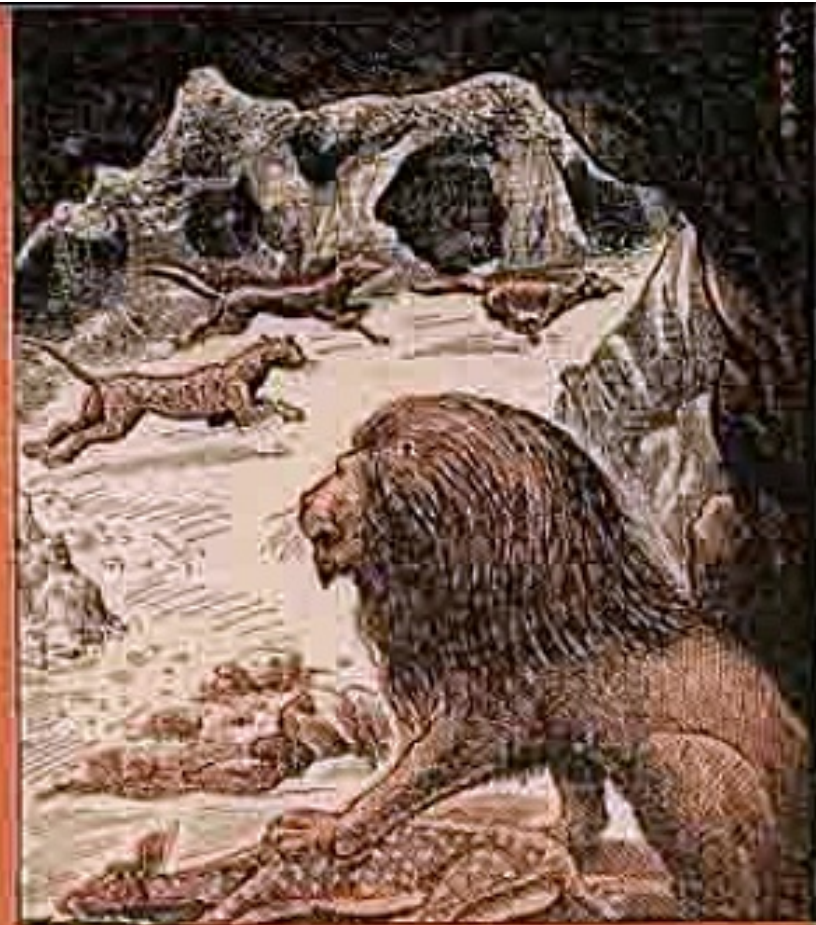
'ठहर जाओ! मैं जङ्गल का राजा हूँ। यह तो तुम लोग जानते ही हो। राजा होने के कारण मुझे दो हिस्से मिलेंगे ही। न्याय-शास्त्र के अनुसार मेरी संतान को भी एक हिस्सा मिलना चाहिए। अब रह गया एक हिस्सा। वह हिस्सा जो मुझसे लड़कर जीत जाएगा, वह लेगा।'—यह कह कर सिंह ने शिकार को अपने पास खींच लिया और अयाल झाड़कर खड़ा हो गया।

'बड़ों के साझे में काम करने का यही फल होता है!'—यह सोचते तीनों दुम दबाए वहाँ से खिसक गए।

नौ की करामात

(१) कोई एक संख्या ले लो। उसे इधर-से-उधर घुमा कर ऊपर की संख्या से घटा लो। घटाने पर जो संख्या बचेगी, उसे नौ से भाग दे दो तो कुछ भी शेष नहीं रहेगा। उदाहरणः—

$$\begin{array}{r} 764 \\ 467 \\ \hline 297 \end{array} \quad 297 \div 9 = 33.$$

ए. डी. बोरा, अम्बाला (पंजाब)

(२) भाग देने वाली निःशेष संख्या का एक और उदाहरण— ८६४ की संख्या लेकर चाहे जिस तरह उलट-पुलट कर ९ से भाग दोगे, तो शेष कुछ भी नहीं रहेगा। अब ८६४ को चाहे जिस तरह उलट-पुलट कर सब को ९ से भाग दोगे तो कुछ भी शेष नहीं रहेगा।

$$\begin{array}{rcl} 864 \div 9 & = & 96 \\ 846 \div 9 & = & 94 \\ 648 \div 9 & = & 72 \\ 684 \div 9 & = & 76 \\ 486 \div 9 & = & 54 \\ 468 \div 9 & = & 52 \\ \hline 3996 \div 9 & = & 444 \end{array}$$

डी. पद्मासन यादवानी

(३) ९ के पहाड़े से निकलने वाले कुछ चमत्कार देखो— ९ को ५ से गुणा करो, तो ४५ ही आएगा न। ५ से अगर दो ९ को गुणा करोगे, तो भी बीच का ९ हटा देने से ४५ ही रहेगा। अर्थात ४ और ५ के बीच में ९ बराबर होगा ४९५ : उदाहरण—

$9 \times 5 = 45$. $99 \times 5 = 495$. इसी तरह सभी अंक समझो।

$9 \times 2 = 18 \ldots 99 \times 2 = 198$
$9 \times 3 = 27 \ldots 99 \times 3 = 297$
$9 \times 4 = 36 \ldots 99 \times 4 = 396$
$9 \times 5 = 45 \ldots 99 \times 5 = 495$
$9 \times 6 = 54 \ldots 99 \times 6 = 594$

$9 \times 7 = 63 \ldots 99 \times 7 = 693$
$9 \times 8 = 72 \ldots 99 \times 8 = 792$
$9 \times 9 = 81 \ldots 99 \times 9 = 891$
$9 \times 10 = 90 \ldots 99 \times 10 = 990$

गिरिजाशंकर, बी. मेहता: सिरसी.

(४) ० से शुरू करके ९ तक की संख्या लिखो। फिर ९ से लेकर ० तक ऊपर की संख्या नीचे डालते आओ। दोनों संख्याओं के जोड़ देने से कितना होगा—अब सोचो।

$$\begin{array}{cccccccccc} 0 & 1 & 2 & 3 & 4 & 5 & 6 & 7 & 8 & 9 \\ 9 & 8 & 7 & 6 & 5 & 4 & 3 & 2 & 1 & 0 \\ \hline 9 & 9 & 9 & 9 & 9 & 9 & 9 & 9 & 9 & 9 \end{array}$$

वी. विवेकानन्दन, विल्लुपुरम

शान्ति देवी

पहले के जमाने में कुछ लोग तलवार के धनी होते थे और उसी के बल पर जीते थे। यानी तलवार लेकर किसी राजा की फौज में भरती हो जाते थे और लड़ाई-भिड़ाई करके जिन्दगी गुजार देते थे।

इस तरह तलवार का धनी और अनेक युद्धों में भाग लेने वाला सूरसिंह नामक एक भारी योद्धा था। एक बार ऐसा हुआ कि उसे कोई काम नहीं रह गया। राजा लोग लड़ाई-भिड़ाई से ऊब उठे थे। इसलिए उनमें सुलह हो गई थी। हर्बे-हथियार सब कोने में डाल दिए गए थे। जब राज्य में सर्वत्र शान्ति बरस रही थी, तब लड़ाई-भिड़ाई की क्या जरूरत थी और फिर किसी को सेना ही क्यों चाहिए थी।

इस तरह सूरसिंह की तलवार बेकार हो गई और वह भारी संकट में जा पड़ा। उसे तो एक ही काम मालूम था—तलवार चलाना। चाहे जितने भी सिर उसके सामने आ जाते आसानी से सब को सपासप काट डालता था। लेकिन अब न कहीं लड़ाई रही, और न उसके लिए कोई काम रहा। फिर वह बचे तो कैसे बचे!

'राजा लोग अब डरपोक बन गए हैं। जनता में साहस का नाम नहीं रह गया है। फिर मेरी तलवार भी तो अब कोने में पड़ी जङ्ग ही खाती रहेगी न!'—यों वह बेहद चिन्ता में पड़ गया और खाने-कपड़े बगैर दिन-दिन सूखने लगा।

दाना-घास न मिलने से उसका घोड़ा भी लड़खड़ाने लग था। आखिर लाचार होकर सूरसिंह कहीं नौकरी की खोज में निकला।

जाते-जाते एक दिन सूर्योदय के समय वह एक खेत के पास पहुँचा। खेत में एक

लेकिन पहले अपने हर्बे हथियार उतार फेंको। फिर आ जाओ मेरे पास।'

सूरसिंह बोला—'अरे भाई, मुझे हल जोतना मालूम नहीं। तुम्हारा कहीं कोई दुश्मन हो तो बताओ—तुरंत उसका सिर उतार कर तुम्हारे सामने ला रखूँगा। बस, तुम मुझे पेट-भर खाना और घोड़े को दाना-घास देते रहना।'

किसान कुछ नहीं बोला। थोड़ी देर वह उसकी ओर अचरज से देखता रहा और फिर हल जोतने में लग गया।

सूरसिंह सोचने लगा—'छिः छिः! लोग कैसे कायर हो गए हैं। भला आदमी कहीं बगैर दुश्मन के भी रह सकता है! लेकिन साहस के अभाव में वह चुप रह जाता है! यह अभागा किसान मुझे हल जोतने को कहता है! क्या मेरे भाग्य में यही लिखा हुआ है!'

यों सोचता-विचारता सूरसिंह एक जङ्गल से होकर गुज़रा और एक हरे-भरे मैदान में पहुँचा। उस मैदान में, एक ऊँची जगह पर, एक रण-चण्डी की मूर्ति खड़ी थी। वही युद्ध-देवी थी। उसको देखते ही सूरसिंह उत्साह से भर गया और घोड़ा दौड़ा कर उसके पास जा पहुँचा।

किसान हल जोत रहा था। सूरसिंह ने घोड़े पर चढ़े ही उसे पुकार कर कहा—'अरे भाई, मेरा नाम सूरसिंह है। मैं एक बड़ा बहादुर सिपाही हूँ। लेकिन अब मेरे पास कोई काम नहीं है। क्या तुम मेरे लिए कोई काम बता सकते हो?'

यह सुनते ही किसान ने हल जोतना रोक दिया और मुड़ कर सूरसिंह की ओर देखा। उसकी कमर में लटकती तलवार को देख कर उसे कुछ डर भी हुआ और उस पर तरस भी आया। उसने कहा—'हल जोतना आता हो तो मेरे पास काम है।

बीस फुट लम्बी वह देवी-मूर्ति थी। उसकी आँखों से अंगारे बरस रहे थे और हाथों में नङ्गी तल्वार—देखते ही लोग भयभीत हो जाते थे।

देवी के हाथ में तल्वार देखते ही सूरसिंह उमङ्ग से भर गया और चिल्ला उठा—'वाह, कैसी अपूर्व मूर्त्ति है! एकदम ठोस सोने की बनी है!'

उसके जवाब में झट एक दूसरी आवाज़ आई—'अरे मूर्ख! सोने की नहीं, मूर्त्ति तो चाँदी की बनी है–बिल्कुल चाँदी की'।

आवाज़ के साथ-साथ उस मूर्त्ति के पीछे से ढाल-तल्वार लिए हुए, एक घुड़-सवार निकल आया।

उसे देखते ही पराक्रमी सूरसिंह के दाँत कटकटा उठे। उसने म्यान से तल्वार खींच ली और गरज कर कहने लगा—'अरे नादान, तू मुझे झुठला रहा है! मैं कौन हूँ—जानता भी है क्या? मैं सू... र....सि....ह....हूँ – सू....र....सि....ह सुन ले!!'

आगन्तुक घुड़-सवार व्यङ्ग से हँसा और फिर म्यान से तल्वार खींचते बोला—'अरे अहमक, तू तो निरा अन्धा मालूम होता है। जिसे चाँदी और सोने में फ़र्क़ न दिखाई देता हो, उसके साथ तल्वार भिड़ना मेरे लिए अपमान की बात है। मेरा नाम है वीरसिंह—यह जानते हुए भी तू यों दिनको रात बना रहा है! तो फिर आ, मैं अपनी तल्वार का जौहर दिखाता हूँ तुझे!!'—कहता और घोड़े को एँड़ लगाता वह सामने आ डटा।

दूसरे ही क्षण दोनों भिड़ गए। तल्वारों की झनझनाहट से, घोड़ों के हाँफने से और दोनों वीरों की ललकारों से वह मैदान गूँजने लगा। इतने में सहसा एक सुरीली ध्वनि सुन पड़ी—'ठहरो, ढाल-तल्वार हटाओ।'

दोनों योद्धा अचरज से उस ओर देखने लगे। मल्लिका, फूल की तरह सफेद पोशाक पहने और मुख-मण्डल से शान्ति बरसाती एक युवती हँसती हुई उन दोनों के सामने आई और बोली—

'तुम दोनों सचमुच बेजोड़ शूर-वीर हो।'

'उसकी बात क्या; लेकिन मेरा नाम है सूरसिंह।'—पहले योद्धा ने गर्व से कहा।

दूसरे ने भी उसी स्वर में दुहराया—'उसकी बात कौन जाने, पर मेरा नाम है धीरसिंह।'

युवती ने कुछ ताना देते कहा—'तुम्हारी तलवारों में जितनी तेजी है, अगर उसका शतांश भी तुम्हारी बुद्धि में होता, तो आज तुम में यह भिड़न्त नहीं हो पाती।'

सूरसिंह ने अपने प्रतिद्वन्द्वी की मखौल उड़ाते हुए कहा—'इस बेवकूफ़ के आँखें नहीं हैं। कहता है—यह मूर्ति चाँदी की है!'

धीरसिंह ने भी उसी तरह परिहास करके कहा—'देखो न यह मूर्ख चाँदी की इस मूर्ति को सोने की मूर्ति कहता है! कैसी तेज निगाह है इसकी!'

युवती खिल-खिला उठी और दोनों वीरों को साथ लेकर मूर्ति के इर्द-गिर्द घूमने लगी। घूमते हुए सूरसिंह को वह मूर्ति चाँदी से मढ़ी दीख पड़ी और धीरसिंह को सोने की दिखाई दी। दोनों अचरज से एक दूसरे-का मुँह देखने लगे।

इतने में वह युवती अदृश्य हो गई। उनके कानों में एक आवाज़ पहुँची—'वीरो, मैं ही शान्ति-देवी हूँ। तुम दोनों महान वीर हो सही, लेकिन बेजरूरत युद्ध करना छोड़ो। कभी भी झूठे आवेश में मत आओ और शांति पूर्वक जीवन बिताओ।'

यह सुन कर दोनों 'शूर-वीर' घोड़ों से उतर पड़े और एक-दूसरे के गले लग गए।
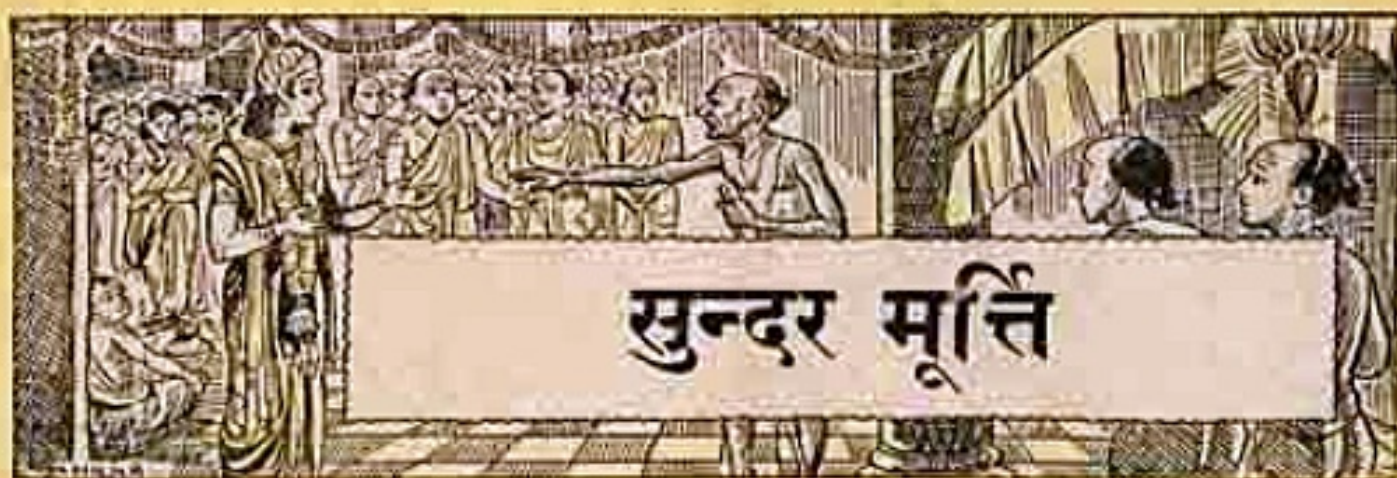
सुन्दर मूर्त्ति

नौवीं सदी के शुरू-शुरू में 'सुन्दर नायनार' नामक एक बड़े भक्त हमारे देश में पैदा हो गए हैं। वे सिर्फ भारी भक्त ही नहीं थे, उनका जीवन-चरित भी अत्यन्त अद्भुत था।

तमिलनाडु के तिरुनावलूर गाँव में एक ब्राह्मण-परिवार रहता था। उसी परिवार में एक सुन्दर बच्चे का जन्म हुआ बच्चा देखने में इतना सुन्दर था कि उसका नाम ही 'सुन्दर' पड़ गया। बच्चे के दिव्य सौंदर्य और उसकी अद्भुत चपलता पर उस गाँव का नायक मुनरायर अत्यन्त आकृष्ट हुआ।

वह उसे अपने घर ले गया और बड़े लाड़-प्यार से पालने-पोसने लगा। उमर होने पर जनेऊ आदि देकर पालक-पिता ने उसको एक नामी गुरु के पास पढ़ने के लिए बिठा दिया। कुछ ही दिनों में समस्त विद्या में 'सुन्दर' पारंगत हो गया।

क्रमशः 'सुन्दर' विवाह के लायक हुआ। ऐसे अपूर्व वर के लिए दुल्हिन की क्या कमी थी! आसानी से विवाह-सम्बन्ध ठीक हो गया। विवाह-मण्डप में वर बैठने ही जा रहा था कि एक जटिल बूढ़ा आया और बोला—'यह मेरा नौकर है। बिना मेरी आज्ञा के तुम लोग इसका विवाह कैसे करने जा रहे हो? अगर मेरी बात पर विश्वास न होता हो, तो यह पत्र देख लो।'

लोग अचरज में पड़ गए। गुस्से में आकर 'सुन्दर' ने बूढ़े के हाथ से वह पत्र छीन लिया और बगैर देखे ही फाड़ कर फेंक दिया।

इससे बूढ़ा जरा भी विचलित नहीं हुआ और दृढ़ता से बोला-'मैं तिरुवेन्नैनल्लूर गाँव का रहने वाला हूँ। 'सुन्दर' ने जो पत्र फाड़ फेंका है, वह नकल-मात्र है। असल ताड़-पत्र मेरे पास सुरक्षित है। जो देखना चाहें, देख सकते हैं।'

रामस्वामी चौधरी

वहाँ जमा हुए सब लोग एक स्वर से चिल्ला उठे—'पागल कहीं का! कहाँ यह ब्राह्मण का बच्चा और कहाँ तुम्हारी सेवकाई! कोई इस अनहोनी बात पर कैसे विश्वास करेगा? भागो यहाँ से—भागो।'

लोगों की इस चिल्लाहट से वह बूढ़ा बिगड़ उठा। उसने ज़ोर से कहा—'मैं किसी तरह यहाँ से हट नहीं सकता हूँ। मेरे पास प्रबल प्रमाण है।' 'अच्छा, लाओ, वह ताड़-पत्र मुझे दिखाओ।'—कहता 'सुन्दर' उसके पीछे पड़ गया।

बूढ़े ने तुरन्त कहीं से एक ताड़-पत्र लाकर ग्राम-वासियों के बीच रख दिया। वह पत्र 'सुन्दर' के पितामह के हाथ का लिखा हुआ था। पत्र में साफ़-साफ़ लिखा हुआ था—'हम और हमारी आने वाली पीढ़ी दर-पीढ़ी की सन्तान सभी तिरुवेन्नैनल्लूर वाले शैतान के सेवक बने रहेंगे।'

वह पत्र पढ़ कर सभी नर-नारी विस्मित हो उठे। गाँव की पञ्चायत बैठी और 'सुन्दर' के पितामह के हस्ताक्षरों को मिला-जुला कर खूब जाँच-पड़ताल शुरू हुई। यह सब-कुछ देख-सुन लेने पर पञ्चों ने फैसला दिया—'वह ताड़-पत्र ठीक 'सुन्दर' के पितामह का लिखा हुआ है। इसमें रंच-मात्र भी सन्देह नहीं।'

इसके बाद पञ्चों ने गरज कर उस बूढ़े से कहा—'अच्छा, भाई, तुम अपना घर तो बताओ सही।'

यह सुन कर बूढ़ा हँस उठा और 'सुन्दर' का हाथ पकड़ कर मन्दिर की ओर चल पड़ा। सभी लोग उसके पीछे हो लिए। जाते जाते बड़े मन्दिर के गर्भ-गृह में जाकर वह बूढ़ा गायब हो गया।

'सुन्दर' जैसे सोकर उठा हो। उसकी पूर्व-जन्म की स्मृति एकाएक जाग उठी।

पूर्व-जन्म में एक दिन घूमते-घूमते वह

'सुन्दर' कैलास पहाड़ पर आ पहुँचा था। वहाँ पार्वती देवी के पास रहने वाली दो सुन्दर सेविकाओं को देख कर मन-ही-मन वह सोचने लगा—'अहा! ऐसी सुन्दरियों से ब्याह न हुआ, तो फिर जन्म ही अकारथ गया!

यह देख कर महादेव ने क्रुद्ध होकर उसे शाप दे दिया—'जा, भूलोक में मेरा सेवक होकर पैदा हो।'

'सुन्दर' भगवान का अनुचर तो था ही। परमेश्वर के पैरों पर गिर कर उसने क्षमा माँगी। यह देख कर अवढर-दानी को अपने भक्त के ऊपर दया आ गई और उन्होंने उसे मुक्ति का उपाय भी बता दिया।

उसी शाप के फल से 'सुन्दर' को दिव्य देह छोड़ कर इस पृथ्वी पर आना और मनुष्य-रूप में पैदा होना पड़ा।

यों ज्ञानोदय होते ही 'सुन्दर' की ईश्वर भक्ति दिन-दिन तीव्र होने लगी। तब उसने एक ओर से देश के समस्त शिवालयों की यात्रा शुरू कर दी। जहाँ-जहाँ वह जाता था, मृदु-मधुर कण्ठ से परमेश्वर की स्तुति करता। उसकी भक्ति और विह्वलता देख कर पत्थर भी पिघल पड़ते थे। यों जहाँ-जहाँ वह गया, परमेश्वर ने उसे अपनी कई अद्भुत महिमा दिखाई, जिससे 'सुन्दर' का नाम सारे देश में विख्यात हो गया।

सुन्दर चिदम्बरम् और तिरुवारूर तीर्थों में भी गया। तिरुवारूर में जब वह था तो 'परवैनाचियार' नामक एक कुमुदांगी कन्या से उसका ब्याह हुआ। सुन्दर को अपने पूर्व-जन्म के ज्ञान-बल से यह मालूम हो गया था कि यह 'नाचियार' ही पार्वतीदेवी की परिचारिका थी जिस पर वह मुग्ध हुआ था। फिर 'तिरुवत्तियूर' ग्राम में जाकर उसने एक बेल-वृक्ष के नीचे 'संगली नाचियार' से भी विवाह कर लिया।

यह 'संगली नाचियार' अलौकिक सुन्दरी थी। 'सुन्दर' समझ गया था कि यह वही

अप्सरा है, जो पूर्व-जन्म में पार्वती देवी की परिचर्य्या में थी। परमेश्वर की प्रेरणा से उसने प्रतिज्ञा की कि मैं तुम्हें कभी नहीं छोड़ूँगा। लेकिन विवाह होते ही वह भारी चिन्ता में पड़ गया। इसका कारण यह था कि प्रतिज्ञा के अनुसार अब वह इस बेल-वृक्ष को छोड़ कर दूसरी जगह कैसे जा सकता था? और यहाँ से वह टलेगा नहीं तो फिर बाकी पुण्य-क्षेत्रों का दर्शन वह कैसे कर सकेगा? इसलिए उसने कातर होकर परमेश्वर से प्रार्थना की—'देवाधिदेव! शीघ्रता में बिना सोचे-विचारे ही मैं प्रतिज्ञा कर बैठा हूँ। अब उसे तोड़ूँ कैसे? अतः अब दया करके आप ही इस वृक्ष में विराजमान हो जाइए।' यों भक्त की प्रार्थना पर आशुतोष भगवान को उस बेल-वृक्ष में रहना पड़ा।

संगली नाचियार के साथ कुछ दिन रहने पर सुन्दर के मन में अन्य क्षेत्रों के दर्शन की चाह तीव्र हो उठी। प्रतिज्ञा-भङ्ग होते देख कर भी वह तिरुवत्तियूर छोड़ कर दूसरे क्षेत्र की ओर चल पड़ा। लेकिन जैसे ही वह गाँव की सरहद पर पहुँचा कि उसके दोनों नेत्र बन्द हो गए। लेकिन अन्धे हो जाने पर भी उसका उत्साह कम न हुआ और भक्ति-भावना से भरे स्तोत्र पढ़ता हुआ पुण्य-पथ पर बढ़ता चला गया।

हिमालय-सा ऊँचा और सागर-सा गहरा अनुराग लिए, हाथ में लाठी पकड़े थाह लेते परों से, जैसे ही वह कांचीपुरम पहुँचा कि उसकी बाईं आँख खुल गई। फिर तिरुवारूर पहुँचते-पहुँचते उसके दोनों नेत्रों में पूर्ण-ज्योति लौट आई।

इस बीच 'सुन्दर' की पहली स्त्री परवै-नाचियार को मालूम हुआ कि उसके पति ने दूसरा विवाह कर लिया है। इस पर गुस्से से उसने कह दिया—'सुन्दर' अब मेरे घर में कदम नहीं रख सकता है।'

इस पर 'सुन्दर' ने परमेश्वर की करुणा-पूर्ण स्तुति की। देवाधिदेव प्रत्यक्ष हुए और पति-पत्नी में मेल करा दिया।

यह सब सुन कर 'कलिकामनायनार' नामक एक शिव-भक्त को बेहद खटक गया। उसने 'सुन्दर' से घर जाकर कहा— 'तुम कैसे भक्त हो जी, जो देवाधिदेव को अपनी संसारिक वासना-पूर्ति के लिए दूत की तरह इधर-उधर दौड़ाते रहते हो! धिक्कार है तुम्हें और तुम्हारी भक्ति-भावना को!'

उस भक्त की फटकार सुन कर सुन्दर अत्यन्त दुःखित हुआ। परमेश्वर को भी बहुत बुरा लगा। सहसा एक दिन उस शिव-भक्त के पेट में ऐसा भारी दर्द शुरू हुआ कि उसकी जान ओठों पर आ गई। बहुत तरह की दवा-दारू की गई, पर फायदा कुछ नहीं हुआ। उसके बाद उस भक्त को स्वप्न हुआ— 'तुम्हारे पेट-दर्द की दवा एक-मात्र सुन्दर के पास है। जाकर उससे इलाज करवा लो।' लेकिन उस हठी शिव-भक्त को आँतों को फाड़ कर मर जाना मन्जूर था, पर 'सुन्दर' की कृपा का भारा उठाना स्वीकार न था।

इसी दृढ़ निश्चय से उसने अपने प्राण-त्याग दिए, पर सुन्दर के पास नहीं गया।

उस शिव-भक्त को यों प्राण-त्याग करते देख कर 'सुन्दर' को अत्यन्त कष्ट हुआ। उसने परमेश्वर से आतुर प्रार्थना की। दुःख-कातर भक्त की प्रार्थना भगवान कैसे अन-सुनी कर जाते! कैलास से आकर अपने हठी भक्त को उन्होंने फिर से जिला दिया। पुनर्जन्म पाकर वह शिव-भक्त 'सुन्दर' की महिमा समझ गया और दोनों प्रेमानुराग के बन्धन में बन्ध गए। इसी समय 'सुन्दर' की दूसरी स्त्री 'संगली नाचियार' भी अपने पति-देव को खोजती-ढूँढ़ती वहाँ आ पहुँची और सब लोग सानन्द रहने लगे।

बाघ और चीते

बाघों में सब से मशहूर होते हैं शेर और चीते। हमारे देश में बङ्गाल के बाघ ही बड़े माने जाते हैं। लेकिन लम्बे कद, हृष्ट-पुष्ट और मजबूत हड्डियों वाले बाघ मंचूरिया में पाए जाते हैं। ऐसे तगड़े बाघ वहाँ इसलिए होते हैं कि वहाँ की आब-हवा खूब ठण्डी और तन्दुरुस्त है।

हिन्दुस्तान के बड़े बाघ दस फुट तक लम्बे और ५५० पाउंड तक वजन वाले होते हैं। शेर सिंह से भी ज्यादा जानवरों को मारता है। हमारे देश का हर-एक शेर औसतन ८०० प्राणियों को मारता है।

शेर के बाद सिंह की बारी आती है। हिसाब लगा कर देखा गया है कि हर साल ५,००० चीतों का शिकार किया जाता है। लेकिन चीता भी चुप नहीं रहता है। वह भी ३५० आदमियों को अपने पेट में डाल लिया करता है।

सच पूछा जाय, तो शेर और सिंह से भी चीता ज्यादा खतरनाक होता है। क्योंकि वह पेड़ों पर भी चढ़ जाता है। शेर से भी अधिक चालाकी से वह झाड़ियों में छिप कर घात में बैठा रहता है। इसीलिए शिकारी शेर से भी अधिक चीते की चिन्ता से चौकन्ने रहा करते हैं। अचानक उछल कर आक्रमण करने में वह बाघ से भी अधिक फुर्तीला होता है। इसी वजह से अफ्रिका देश वाले बाघों से नहीं डरते, पर चीते का नाम सुनते ही वे चौंक उठते हैं।

अफ्रिका के बाघ अपने शिकार को बिना दर्द दिए ही मार डालते हैं। यानी इतनी तेज़ी से उन्हें मार डालते हैं कि चीखने-चिल्लाने का भी उन्हें अवसर नहीं मिलता है!

मैं मूर्ख ही हूँ

बहुत पहले की बात है एक गाँव में ठकर साहू नामक एक बनिया था। उसके पास नकदी पूँजी के साथ-साथ सभी तरह के फल-वाले पेड़ों से भरा एक बड़ा बाग भी था! उसी बड़े बाग के एक कोने में एक छोटी-सी झोंपड़ी डाल कर वह बाग की रखवाली करता रहता था।

ठकर साहू धनी होने पर भी बड़ा भारी कन्जूस था। बाग का फल वह खुद कभी नहीं खाता था। उसका एक फल भी कभी किसी को नहीं देता था। बाग के वास्ते उसने कोई नौकर नहीं रखा था। जरूरत पड़ने पर मजूर लगा देता था। एक दिन फल तोड़ने के लिए उस ने कुछ मजूरों को लगा रखा था। फलों से लदी डालियों से फल तोड़-तोड़ कर मजूर टोकरों में रख रहे थे। ठकर साहू बड़ी सावधानी से तोड़े हुए फलों को गिनता और उनके दाम का हिसाब लगाता जाता था।

इतने में दूर पर फल तोड़ते हुए एक मजूर ने एक फल उठाया और दाँतों से कुतरने लगा। यह देखते ही ठकर साहू बोल उठा—'अरे, फल खाते हो! लेकिन उस फल का दाम याद रखना—एक रुपया है और तुम्हारी मजूरी ठहरी है सिर्फ आठ आना। इसलिए कल भी आकर तुम्हें यहाँ काम करना होगा।'

यह सुनकर मजूर दंग रह गया। एक तो सुबह से वह फल तोड़ रहा था। देख-देख कर मन मचल उठा और उसने एक फल मुँह से लगा लिया। इसके लिए वह एक रुपया कीमत माँगता है!—यह सोच कर वह गुस्से से तिलमिला उठा। बस, ठकर साहू और मजूर में चख-चख शुरू हो गई। धीरे-धीरे गाली-गलौज उसके बाद हाथा-पाई

नौबत आ गई। दो-चार थप्पड़ खाने के बाद बिगड़ कर मजूर ने उस गुल-थुल साहू की खूब मरम्मत कर दी।

तब से टकर साहू ने पेड़ों से फल तुड़वाना ही बन्द कर दिया। लेकिन पके फलों को देख कर जब-तब उसके मुँह में पानी भर आता था। फिर भी अपने मुँह में कभी वह फल नहीं डालता था; क्योंकि सोचता था कि फल खा जाने से तो चार-छः आने का घाटा ही हो जाएगा उसे।

इस तरह उस कंजूस के दिन बीतने लगे और उसके बाग में तरह तरह के फल पक कर चूने लगे। लेकिन टकर साहू मुँह में पानी भरे उन्हें देखता रह जाता था। अगर कोई पूछ बैठता कि अरे भाई, बगीचे को यों क्यों बिगाड़ रहे हो? तो वह गंभीर होकर कह उठता—'क्या मुझे मूर्ख समझते हो? फल तोड़ने के लिए मजूर लगाता हूँ, तो ये बिना पूछे ही भारी-भारी फल खाने लगाते हैं और जब दाम देने कहता हूँ तो मार-पीट करने लग जाते हैं! फिर मैं पैसे देकर यह आफ़त क्यों मोल लेता रहूँ?'

एक दिन टकर साहू अपने बाग में चक्कर लगाने को निकला। बाग में कुल कितने पेड़ हैं? उनमें कितने फल वाले हैं? कितने फल चू पड़े हैं और कितने चूने पर हैं?—सब का हिसाब लगाने लगा।

यों टकर साहू बाग में घूम रहा था कि सुरीली आवाज़ से गाता हुआ एक पंछी उसे दीख पड़ा। वह पंछी गौरैय्या के बराबर ही छोटा था। लेकिन उसकी पूँछी में सतरङ्गी इन्द्र-धनुष के सभी रङ्ग दीख पड़ते थे। वह पंछी जब गाने लगता था, तो ठूँठ से भी कोपलें निकल आती थीं। उसके मधुर गान को सुन कर टकर साहू बेसुध बन गया। फिर दबे पाँव पीछे से जाकर उसने उस चिड़िए को पकड़ लिया। पकड़े जाने पर वह पंछ न तो छटपटाया

और न उसने चोंच ही चलाई। सिर्फ़ धीरे से उसने कहा—'अरे भाई ठक्कर साहू, अगर मुझे छोड़ दोगे तो, मैं तुम्हें तीन ऐसी बातें बताऊँगा जिनसे तुम्हें बेहद फ़ायदा होगा।'

पंछी के मुँह से आदमी की बोली सुन कर ठक्कर साहू घबरा उठा। ढाढ़स बटोर कर उसने पूछा—'सचमुच फ़ायदे की बात बताओगे?'

फ़ायदे की बात से उसने धन-प्राप्ति का ही अर्थ लिया था।

'हाँ फ़ायदे की ही बात बताऊँगा।'—पंछी ने जवाब दिया।

बिना कुछ कहे ही ठक्कर साहू ने पंछी को अपनी मुट्ठी से छोड़ दिया। फ़ायदे की बात सुनते ही उसकी रही-सही बुद्धि भी जाती रही थी।

पंछी उड़ कर पास के एक पेड़ पर जा बैठा। ठक्कर साहू कान खोले और मुँह-बाए पंछी की ओर देख रहा था कि 'देखूँ, क्या कहता है?' पंछी ने कहा—'पहली बात यह बताता हूँ कि जो चीज़ नहीं है, उसकी चिन्ता मत करो।'

यह सुन कर ठक्कर साहू ने गुस्से से कहा—'ऐसी छोटी-छोटी नीति की बातें क्या मैं नहीं जानता? बचपन में मैंने ऐसे कितने ही नीति उपदेश पढ़े थे। मैं मूर्ख तो हूँ नहीं।'

पंछी ने गम्भीरता से कहा—'सचमुच तुम मूर्ख ही हो। इतनी देर तक तुम मुझे अपनी मुट्ठी में रखे रहे, और यह नहीं देख सके कि मेरे शरीर में एक मन सोना भरा है।'

'एक मन सोना! अरे-रे, मैंने तुम्हें क्यों छोड़ दिया अपनी मुट्ठी से—कैसा मूर्ख हूँ मैं!'—यों पछताने लगा वह ठक्कर साहू। पंछी ठठा कर हँसा और पंख फड़फड़ा

कर बोला—'तुम मूर्ख ही नहीं, महामूर्ख हो' गौरय्ये-से छोटे पंछी के बदन में एक मन सोना कहाँ से आएगा— इस पर तुम ने झट कैसे विश्वास कर लिया? पागल कहीं का!'

टकर साहू ने दाँत कटकटाए और भौंहें चढ़ाईं। इस पर पंछी ने फिर कहा—'अब दूसरी सीख सुनो— दूसरों की बात पर झट विश्वास मत कर लेना।'

'यह भी तो मैंने बचपन में ही पढ़ा था। इस में नयापन क्या है?'—पुतली नचा कर टकर साहू ने जवाब दिया।

'सब कुछ जानने पर भी तुम निरे मूढ़-ही रहे' साहू जी! अब तीसरी सीख भी सुन ही लो। मुट्ठी में आई लक्ष्मी को छोड़ कर उसे पेड़ की डाल पर मत ढूँढा करो!'

यह सुन कर टकर साहू ने पंछी के सामने सिर झुका दिया और धीरे से बोला—'सचमुच मैं मूर्ख हूँ।'

उसी समय उसके बाग में एक बगूला उठा। गिरे-पड़े पत्तों, डाली-टहनियों, धूल-झकड़ को बटोरे वह बगूला हर पेड़ को जोरसे झकझोरने लगा। देखते-ही-देखते बड़े-बड़े पेड़ तड़ातड़ टूटने लग गए।

टकर साहू ने डर के मारे आँखें मूँद लीं। जब आँखें खोलीं तो देखा—'जड़-मूल से सब पेड़ उखड़े पड़े हैं। पंछी का कहीं पता नहीं है। उसकी झोंपड़ी भी कहीं उड़ गई थी–सिर्फ उसकी नङ्गी दीवारें खड़ी थीं।'

लक्ष्मी की उस साहू पर बड़ी कृपा थी—धन-धान्य से वह भरा-पूरा था। लेकिन—'न मैंने खाया, न दूसरों को खाने दिया। आखिर सब कुछ तहस-नहस होकर ज़मीन में मिल गया! सच, मैं भारी मूर्ख हूँ।'—यों पछताते टकर साहू के प्राण-पंछी भी उड़ गए!

सच, कंजूसों की यही हालत होती है।

मोड़ लेती रेल-गाड़ी पटरी पर से क्यों नहीं गिरती ?

रेल-गाड़ी नाक की सीध में चलती रहती है और मोड़ पर सर्र से घूम जाती है। चाहे जितनी तेज़ी से क्यों न जाती रहे, मोड़ पर घूमते समय वह पटरी पर से कभी नहीं गिरती। यह कैसे होता है ?

इसके लिए गति-शास्त्र के ज्ञाता न्यूटन की प्राथमिक बातें जान लेना जरूरी है। वह कहता है कि चलती रहने वाली कोई भी चीज़, रुकावट के बगैर, सीधे ही चलती जाएगी यही इसका स्वभाव होता है। इस सिद्धान्त के अनुसार देखा जाय, तो जो रेल-गाड़ी नाक की सीध में जाती रहती है, फिर मोड़ पर उलट क्यों नहीं जाती है ? वहाँ रुकावट तो होती ही है उसे। इसका सब से प्रधान कारण है रेल-गाड़ी के पहिए की बनावट। रेल-गाड़ी के पहियों का एक किनारा खड़ा होता है। फिर भी गाड़ी के न उलटने का एक यही कारण नहीं है। इस तस्वीर में दिए गए रेल-गाड़ी के पहिए की ओर गौर से देखो। रेल-गाड़ी का पहिया दाहिनी तरफ़ से ढलुवाँ होता है।
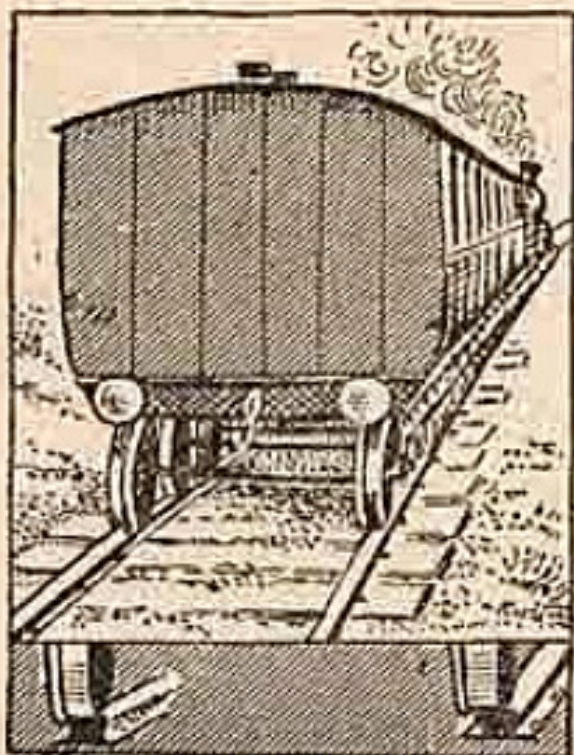
इसी से चलते समय पहिए आगे तो बढ़ते हैं, पर बाईं तरफ़ के खड़े किनारे के कारण, पटरी पर से अलग नहीं होते।

इस के अलावा इसके लिए एक और इन्तजाम कर दिया गया है। मोड़ की जगह पर, गाड़ी की तेज़ी के मुताबिक ही, व्यवस्था रहती है। इसीलिए गाड़ी आसानी से घूम जाती है और पटरी से अलग नहीं होती।

नकली गढ़ विजय

भारत में राजपूताना राजाओं और वीरों का देश माना जाता है। राज-पुत्रों की जन्म-भूमि होने के कारण ही उसका नाम राजपूताना पड़ा। किसी समय राजपूताने में छोटे छोटे कई राज्य थे। मेवाड़ राज्य भी उनमें एक था।

मेवाड़ की राजधानी चितौड़ थी। और उसके अधीश्वर 'राणा' कहे जाते थे। उन्हीं मेवाड़-पतियों में एक 'रतन राणा' भी था।

'रतन राणा' को अपने राज-पद से सन्तोष नहीं था। वह मेवाड़ के आस-पास के राजाओं को जीतने, उनसे कर वसूल करने और चक्रवर्ती राजा होने का भी स्वप्न देखने लगा। बस, अपने पास-पड़ोस के सभी छोटे-बड़े राजाओं को उसने दूत के द्वारा संदेशा भेजा—'तुम लोग आकर मेरे पैरों पर पड़ो और नजराना भेंट धरो।'

मेवाड़ की राजधानी चितौड़ से साठ मील दूर पर बूँदी नामक एक गढ़ था। वहाँ का गढ़पति सूरजमल बड़ा ही पराक्रमी योद्धा था। उसके पास भी 'राणा' का पत्र पहुँचा। चितौड़ के अद्भुत 'राणा' का वह पत्र पढ़ते ही वीर सूरजमल, लाठी-खाए-साँप की तरह, ऐंठ गया।

'राणा का दूत यह देख कर डर गया और पीछे मुड़ कर देखे बगैर ही वह जिस रास्ते आया था, सीधे उसी रास्ते चितौड़ लौट गया और बूँदी-दरबार में जो कुछ हुआ था, सब अपने राणा को साफ-साफ सुना दिया।

दूत की बात सुन कर राणा जल-भुन गया। और तुरन्त बूँदी-राज्य पर चढ़ाई करने के लिए सेना को तैयार होने का हुक्म दे दिया। चढ़ाई का यह हुक्म सुनते ही मन्त्री और सेनापति ने राणा को बहुत

अविनाश कुमारी

तरह से समझाया-बुझाया कि बूँदी का नरेश बड़ा बलवान है। बूँदी का किला अटूट है और उस पर चढ़ाई करना हँसी-खेल का काम नहीं है।

लेकिन राज-पद के गर्व में अन्धे बने राणा को किसी की बात नहीं जँची। सभी की सलाहें उसने ठुकरा दीं और सेना लेकर खुद बूँदी पर चढ़ दौड़ा।

राणा के दरबार में लालजी नामक एक बहादुर सरदार भी था। वह बूँदी-राज्य में ही पैदा हुआ था। बूँदी-नरेश सूरजमल के साथ दूर का उसका कुछ नाता-रिश्ता भी था। एक दिन किसी बात में मत-भेद हो जाने के कारण आत्माभिमानी लालजी अपने विश्वासी सहचरों के साथ मेवाड़ राणा के पास चितौड़ चला आया था।

राणा जब बूँदी पर चढ़ाई करने गया, उस समय लालजी चितौड़ में नहीं था। असम साहसी और परम विश्वासी होने के कारण राणा ने उसको एक विद्रोही गाँव से मालगुजारी वसूल कर लाने को भेज दिया था।

राणा ने तो यही सोचा था कि बड़ी आसानी से बूँदी-गढ़ उसके हाथ में आ जाएगा। लेकिन बूँदी-नरेश सूरजमल जैसा बलवान था, बुद्धिमान भी उससे कम नहीं था। चितौड़ का राणा उस पर चढ़ाई करने आ रहा है, यह सुनते ही झट-पट उसने उसे नाकामयाब बनाने के सब इन्तज़ाम कर डाले। साल-भर के लिए खाने-पीने, गोले-बारूद वगैरह सामान जुटा कर उसने बूँदी किले का फाटक बन्द करवा दिया।

'रतन राणा' उसकी यह चातुरी देख कर बड़ी चिन्ता में पड़ गया। किले के चारों ओर पानी से भरी गहरी खाई को पार कर पहाड़-से ऊँचे किले पर चढ़ना उसके लिए एकदम असम्भव जान पड़ा!

उधर, किले के ऊपर से तीर, ढोके और गोलों की मार से खुले-मैदान में खड़ी उसकी सेना धड़ा-धड़ तहस-नहस होने लग गई। ऐसी हालत में उद्दण्ड राणा ने प्रण किया— 'जब तक बूँदी-गढ़ को बश में नहीं कर लूँगा, तब तक भोजन नहीं करूँगा।'

परंतु प्रण कर लेने से ही तो किले पर अधिकार नहीं हो जाता है! उससे न परिस्थिति में कोई परिवर्तन हुआ, न किले पर अधिकार हुआ और न राणा ने भोजन किया।
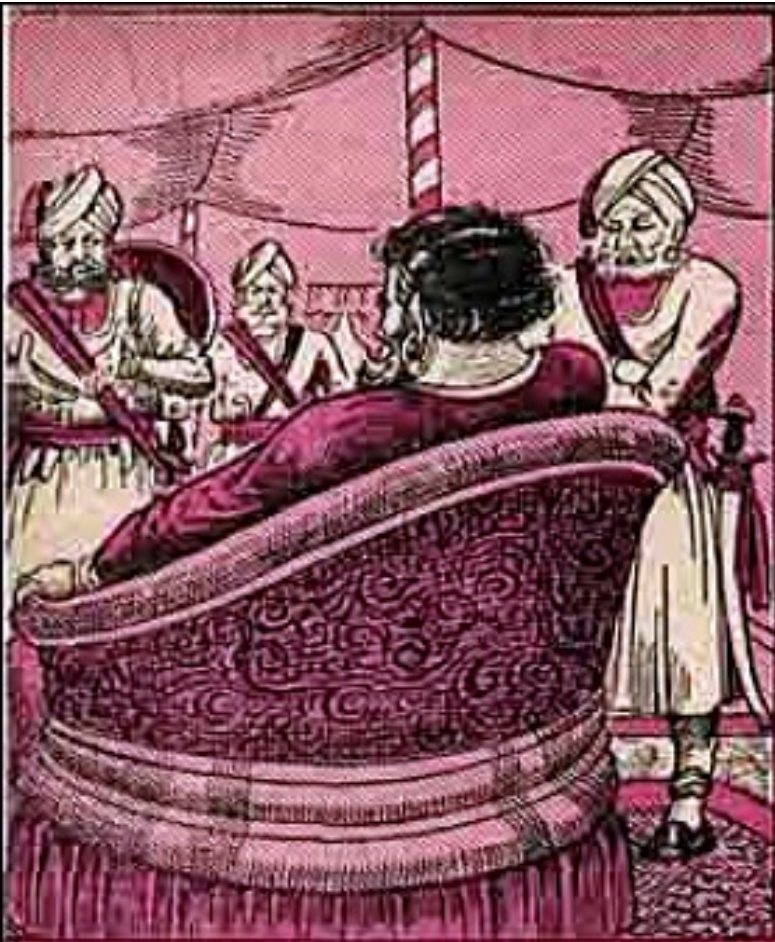
मन्त्री और प्रमुख राज-पुरुषों ने अनेक प्रकार से राणा को समझाया, पर दुराग्रही राणा ने अपना हठ नहीं छोड़ा और बगैर भोजन किए बैठा रहा।

जैसे-जैसे दिन बीतने लगे, राणा क्षीण-से-क्षीणतर होने लगा। आखिर राज्य का हर आदमी इस चिन्ता में पड़ गया कि राणा का हठ कैसे छुड़ाया जाय।

ऐसे समय मुख्य मन्त्री को एक उपाय सूझ गया। उसने राणा के पास जाकर निवेदन किया—'महाराज, सभी को मालूम है कि श्रीमान् अपनी बात के धनी हैं और अपना बूँदी विजय वाला प्रण प्राण रहते नहीं छोड़ सकते हैं। श्रीमान् की वह टेक भी नहीं टूटेगी। इसके लिए मैंने एक उपाय सोच लिया है। अब हम लोग चितौड़ लौट चलें। वहाँ जाकर बूँदी नाम का एक छोटा गढ़ बनवा लें और श्रीमान् सेना लेकर उसे तोड़ डालें। बस, श्रीमान् की प्रतिज्ञा पूरी हो जाएगी।'

यह उपाय भूख से ढीले पड़े राणा को पसंद पड़ गया। लेकिन झेंप के कारण कुछ भी जवाब न देकर उसने सेना को चितौड़ लौट चलने का हुक्म दे दिया। सब लोग अपना-सा मुँह लेकर चितौड़ लौटे।

मन्त्री की सलाह से झट-पट एक किला बनवाया गया और उसके सिंहद्वार पर अंकित

कर दिया गया—बूँदी-गढ़। मन्त्री ने कहा—'रात भर इस गढ़ को छोड़ दीजिए। सबेरे आकर सबों के सामने इसे तोड़ डालिएगा।'

इधर लल्लूजी, अपना काम पूरा करके, उसी रात को चितौड़ वापस आ गया था। एक दम नए किले को देख कर विस्मय से उसने पूछा—'यह सब क्या है भाई?'

लोगों के मुँह से सब कुछ सुन कर वह चिल्ला उठा—'सब तो खूब है राणा का राज्य!'

उधर—सबेरा होते ही 'राणा' का सेनापति थोड़े कुछ हाथी-घोड़ों के साथ उस नकली किले पर चढ़ आया और अपनी सेना को ललकार कर कहने लगा—'चढ़ जाओ वीरो, इस दुर्ग पर और इसे पलभर में तहस-नहस कर डालो।'

अत्यन्त उत्साह के साथ 'राणा' के सैनिक-गण मेवाड़ेश्वर का जय-घोष करते किले पर चढ़ने लगे। लेकिन, जाने कहाँ से एका–एक तीरों की भयंकर वर्षा होने लगी और राणा के सिपाही घायल हो-होकर औंधे सिर खाई में गिरने लगे।

राजा का सेनापति यह अनहोनी बात देख कर दङ्ग रह गया। वह सोचने लग गया—'कौन है किले के अन्दर जो इस तरह उत्साह से चढ़ते हमारे सिपाहियों की हत्या कर रहा है?' उसने हुक्म दिया—'किले का फाटक तोड़ दो और सब लोग अन्दर घुस जाओ।'

हुक्म तो उसने दे दिया, लेकिन पत्थर के बने उस फाटक को खोलना क्या आसान काम था! क्या इन थोड़े-से सिपाहियों के बूते की बात थी वह!

जान हथेली पर लेकर राणा के सैनिक बढ़े और गिरते-पड़ते, मरते-कटते, किसी तरह उन्होंने किले के फाटक को खोला। लेकिन सब से बड़ा आश्चर्य तो यह हुआ कि फाटक खुल जाने पर भी वे, अन्दर जाने से लाचार थे। बात यह थी कि एक सौ बहादुर

सहचरों के साथ लालजी दरवाजा रोके खड़ा था। लालजी को देखते ही सेनापति के तन-बदन में आग लग गई। उसने गरज कर कहा—'वाह रे बहादुर वीर, क्या चींटियों के पर निकल आए हैं!'

'मौत से डरने वाले राणा के बड़े सेनापति होंगे! हमें यह डर नहीं।' बूँदी-गढ़ से विजय-पताका उड़ा कर लौट आए और यहां नकली किला बनवा कर लगे बहादुरी दिखाने! शाबाश!!....तुम लोगों में पौरुष-पराक्रम होता तो जाकर बूँदी-गढ़ को जीत आते! यह क्या कालिख लगा रहे हो, वीराधमों!'

यह सुनते ही राणा के लोग जड़वत् हो गए। लालजी फिर गरज उठा—'जानते हो, मैं बूँदी-निवासी हूँ। स्वप्न में भी बूँदी का अपमान नहीं सह सकता हूँ। इसीलिए मैं इस किले में घुस आया हूँ और इसकी रक्षा करने का सङ्कल्प कर लिया है। आओ— जिसे आने का शौक हो। और जरा बूँदी वाले कैसे बहादुर होते हैं, उनके भी जौहर देख लो।'—ऐसा कह कर लालजी मूँछों पर ताव देता ताल ठोंकने लगा।

लालजी के सहचरों के साथ मेवाड़ी-सेना की जम कर मुठभेड़ हुई। लालजीरके सहचर संख्या में थोड़े थे, पर उन्होंने असम साहस से सामना किया और राणा के अनेकों सिपाहियों को, बात-की-बात में, धरती पर सुला दिया।

किले पर अधिकार हो गया, यह सोच कर राणा थाली से कौर उठाना ही चाहता था, कि उसे लालजी की मुठभेड़ की बातें मालूम हुईं। हाथ-का-कौर थाली में आ गिरा। वह बुरी तरह अपनी गलती पर पछताने और अपने-आप को बार-बार कोसने लगा।

नकली किला होने पर भी देशभक्त लालजी से बूँदी का अपमान सहन नहीं हुआ।

मुख-चित्र

भीम धीरे-धीरे बड़ा और बड़ा हुआ। सोलहवाँ साल लगते-लगते उसके पिता पाण्डु महाराज चल बसे। इसलिए माता कुन्तीदेवी के साथ पाँचों पाण्डव हस्तिनापुर पहुँचे। वहाँ धृतराष्ट्र महाराज के सौ पुत्र कौरवों के साथ उनका पालन-पोषण होने लगा। कौरव-पाण्डव साथ-साथ खेलते थे। उन सबों में भीम का बल-पराक्रम अद्भुत था। दस आदमी किसी पेड़ पर चढ़े होते तो भीम नीचे से पेड़ को पकड़ कर ऐसा हिला-डुला देता कि सब-के-सब धड़ाधड़ गिर पड़ते थे। भीम अपने इस अद्भुत बल-पराक्रम का प्रदर्शन सिर्फ शौक से करता था। उसके मन में किसी तरह की कोई दुष्टता नहीं थी। लेकिन दुर्योधन तो घमण्ड और बेकार की जिद से बेहद भरा हुआ था। इसलिए वह भीम के बल-पराक्रम को देख-देख कर जलने लगा। फिर वह इस ताक में रहने लगा कि आँखों के इस काँटे को कैसे निकाल कर फेंक दिया जाय।

एक दिन गङ्गा के किनारे प्रमाण-कोटि स्थान पर कौरव-पाण्डवों का शिविर डाला गया। भोजन और पानी में कुछ नशीली चीजें डाल दी गई थीं। यों खा-पीकर जब सब लोग बेहोश बने सोए थे, तब दुर्योधन के आदमियों ने एक मजबूत रस्सी से बाँध कर भीम को गङ्गा में फेंक दिया। गङ्गा के शीतल जल में पड़ते ही भीम की बेहोशी दूर हो गई। फिर एक झटके से रस्सी को तोड़ कर वह अपनी जगह आ गया और चुपचाप सो रहा।

आधी रात को दुर्योधन ने आकर देखा तो भीम अपनी जगह पर सोया हुआ था। यह देख कर दुर्योधन ने सोचा—यों काम होने का नहीं। उसने एक दूसरा उपाय खोज निकाला। एक दिन जब भीम गाढ़ी नींद में सोया था तब कुछ लोगों ने एक भयङ्कर काला-नाग लाकर उसके शरीर पर डाल दिया। नाग ने भीम को जोर से काटा, पर अचरज यह, कि उसके विषैले दाँत भीम के शरीर में चुभे ही नहीं। फिर जहर कैसे चढ़ता! नींद टूटने पर भीम ने, सुतली की भाँति मसल कर, उस नाग को फेंक दिया।

अनमोल-धर्म

बहुत पुरानी कहानी है। किसी गाँव में एक गरीब आदमी रहता था। उसका नाम था भगवान महतो। गाँव में मेहनत-मजूरी करके अपना और अपने परिवार का गुजर-बसर करता था। परिवार उसका बहुत बड़ा था जैसे सतपुतिया तुरई की बाड़ी ही हो।

आमदनी का दूसरा जरिया तो कुछ था नहीं। इसलिए रात-दिन बाल-बच्चों के पालन-पोषण करने की भयङ्कर चिन्ता में वह डूबा रहता था। कभी-कभी घर में कुछ नहीं रहने पर, सारे परिवार को भूखा ही सो जाना पड़ता था। गरीबी की इस बदतर हालत में ये असहाय पति-पत्नी दिन-रात भगवान की प्रार्थना करते रहते थे कि कैसे यह संकट की जिन्दगी बिताई जाय। खुद भूखों रहा जा सकता है, पर बाल-बच्चों को तड़पते कैसे देखा जाय।

इसी समय दूर के कैलासपुरी गाँव में, गाड़ियों पर रुपया लाद कर एक संन्यासी आया। वह संन्यासी एक अजीब आदमी था। कहीं भी किसी धर्मात्मा को देखता तो वह उसके पुण्य-कर्मों को काँटे पर रुपयों से तौल लेता था और सारी रकम उसे देकर विदा कर देता था।

संन्यासी की यह अद्भुत बात बिजली की तरह चारों ओर फैली और दूर-दूर के गाँवों से भी अनेक लोग आने और अपने पुण्यों का मोल ले जाने लगे।

धीरे-धीरे यह बात भगवान की औरत के कान में भी पड़ी। सुनते ही वह अपने पति के पास पहुँची और धीरे से बोली—'तुम भी क्यों न चले जाते हो उस महात्मा के पास!'

लेकिन भगवान ने उदास होकर कहा—'अरे, कौड़ी-कौड़ी के मुँहताज हम वज्र-दरिद्रों

प्रभातकुमार गुप्त

को इतना पुण्य कहाँ से आएगा जो तौला जा सके! जानती हो न—पुण्य दान-धर्म करने से होता है। और दान-धर्म धनी लोगों से ही हो सकता है—यह भी तुम खूब जानती हो! फिर हम फिजूल बालू से तेल निकालने की कोशिश क्यों करें?'

लेकिन स्त्री ने हठ-पूर्वक कहा—'इतनी बड़ी उम्र हो गई है तुम्हारी। क्या कोई छोटा-सा भी धर्म-कार्य नहीं किया होगा तुमने! जरा दिमाग पर जोर देकर याद करो। न जाने कितने लोग अपने धर्म को बेच कर संन्यासी के हाथ से सैकड़ों-हजारों रुपए ढो-ढो कर ला रहे हैं। और तुम यों हाथ-पर-हाथ धरे बैठे हो! तुम भी जाओ और पुण्य बेच कर कुछ ले आओ जिससे हमारे बाल-बच्चे भूखों मरने से तो बचें।'

भगवान महतो से स्त्री की रोज-रोज की ये बातें न सही गईं। एक दिन ऊब कर वह उठा और अंगोछे में कुछ कलेवा बाँध-कर संन्यासी के पास चल पड़ा।

रास्ते में ऐसे बहुत-से लोग उसे दिखाई पड़े, जो अपने पुण्य-कार्यों की याद करते और उनकी कीमत का अन्दाज लगाते दौड़ते चले जा रहे थे। कुछ लोग पालकियों पर चढ़े थे, तो कुछ लोग घोड़ों पर सवार थे और बहुत-से लोग बैल-गाड़ियों में लदे-फदे टुन-टुन करते भागे जा रहे थे।

यह सब देख-सुन कर भगवान को भी कुछ कुतूहल हुआ। 'कहीं किसी भी कोने में, मेरा एक भी पुण्य है क्या!'—बड़ी गम्भीरता से वह उधेड़-बुन में पड़ गया। 'अरे, संन्यासी को सही जवाब न देने पर, कहीं अपना-सा मुँह लेकर लौटना न पड़े मुझे!'—कई बार उसे यह घोर निराशा हो आई। फिर भी वह हताश न हुआ और पैर आगे ही बढ़ाता गया।

जङ्गल-पहाड़ों से चलते-चलते यात्री-दल एक बहुत बड़े बरगद के पेड़ के पास पहुँचे उस बरगद को देखते ही भगवान को कुछ याद आ गया और देखते-देखते उसका उदास मुँह खिल उठा। क्यों-? उसका भी एक कारण था। वह भी सुनो:

कुछ साल पहले एक दिन इसी विशाल पेड़ के पास से होकर उसे कहीं जाना पड़ा था। खूब याद है— ठीक इसी पेड़ के नीचे आराम करने के लिए वह बैठ गया था। उस समय भी वह कैलासपुरी ही जा रहा था। तब भी वह गरीब ही था। लेकिन हालत ऐसी बदतर न थी।

भगवान की औरत पड़ोसिन के घर से आटा पैंचा माँग लाई और पति के लिए कलेवा बना दिया था। कलेवे की गठरी हाथ में उठाए, वह चल पड़ा था। चलते-चलते दोपहर के वक्त वह इसी पेड़ के पास पहुँचा था।

सबेरे से चलते-चलते थक जाने के कारण उसे भूख-प्यास खूब लग रही थी। छाया में बैठ गया। कुछ सुस्ताने के बाद उसने उतावली से अपने कलेवे की गठरी खोली और देख-भाल कर खाने की तैयारी करने लगा। ठीक जब वह कौर उठा रहा था कि पास ही उसे एक अत्यंत करुण-वाणी सुनाई पड़ी—'ओ भाग्यवान भाई, तीन दिन हो गए हैं मुँह में एक कौर डाले हुए! एक कौर दे दो, भाई!'

भगवान महतो ने अचरज से सिर उठा कर देखा कि कौन बोल रहा है! नजर उठाते ही एक सौ-साल का बूढ़ा आकर उसके सामने लाठी टेक कर खड़ा हो गया। उसे देख कर भगवान का दिल पानी-पानी हो गया। फूँक देने से उड़ जाए— ऐसी थी उसकी हालत।

पल-भर भी इधर उधर किए बिना भगवान उठा और बूढ़े के पास पहुँच गया। फिर बड़ी सावधानी से सम्हालते हुए उसने उसे अपनी

जगह पर ला बिठाया। फिर जो कलेवा खुद खाने जा रहा था, वह गठरी ही उठाकर उसने उसके आगे कर दी और पेट-भर खाने को कहा।

बूढ़ा संकोच में पड़ गया। लेकिन भगवान ने जोरदार आग्रह किया। आखिर भूखा तो वह था ही किसी तरह— खाने लग गया। आधी गठरी खाली कर जाने के बाद, डकार लेकर, बूढ़ा उठा और भगवान महतो को अनेक आशीर्वाद देकर, अपनी राह चला गया।

आज इस पेड़ को देखते ही, वे सब भूली बातें, एकाएक भगवान को याद आ गईं। इसी से उसका मुँह खिल उठा था।

आखिर एक पुण्य-कार्य तो उसने किया है, यह सोच कर वह उमंग से भर गया। अब जाकर उसके मन को कुछ ढाढ़स बँधा।

इस ढाढ़स से वह तनकर उठा और तेजी से पैर बढ़ा कर, कैलासपुरी जा पहुँचा। वहाँ —

कैलासपुरी में धर्मात्मा संन्यासी जहाँ रहता था, उस मकान में लोगों की रेल-पेल मची हुई थी। संन्यासी के सामने एक बड़ा काँटा लटक रहा था। धर्मात्मा लोग आ-आकर उसके एक पलड़े पर बैठ जाते थे। दूसरे पलड़े पर संन्यासी रुपए रखता जाता था। यों जो जितना पुण्यशाली होता था, उसे उतनी रकम मिल जाती थी। रकम हाथ लगते ही, गठरी बाँध कर, लोग अपने घरकी ओर चल देते थे। उन धर्मात्माओं को देख कर भगवान को अत्यन्त लज्जा हो आई।

उसे बड़ी चिन्ता होने लगी कि अपने उस छोटे-से पुण्य-कार्य की बात वह संन्यासी के सामने कैसे कहेगा! और अगर कहीं उसका यह काम 'धर्म' की गिनती में नहीं आया, तब तो, वह लज्जा में डूब ही जाएगा न! यों आगा-पीछा करता वह एक कोने में दुबक कर बैठ गया।

दीन भगवान को यों दुबका देख कर

संन्यासी ने पूछा—'भाई, तुम कौन हो? यहाँ क्यों आए हो?'

भगवान संकुचित होकर कहने लगा—'महाराज, गरीबी की मार न सह कर आपके पास दौड़ पड़ा हूँ कि कुछ-न-कुछ कह कर कुछ रकम ले जाऊँ! लेकिन सच तो यह है कि, मैने कोई बड़ा पुण्य-कार्य नहीं किया है।'

संन्यासी ने उसे धीरज देकर कहा—'अरे भाई, धर्म-कार्य में गरीब और अमीर का कोई भेद नहीं होता। थोड़ा और बहुत का भी भेद नहीं होता। इसलिए तुम निःसंकोच होकर अपनी बात कह डालो।'
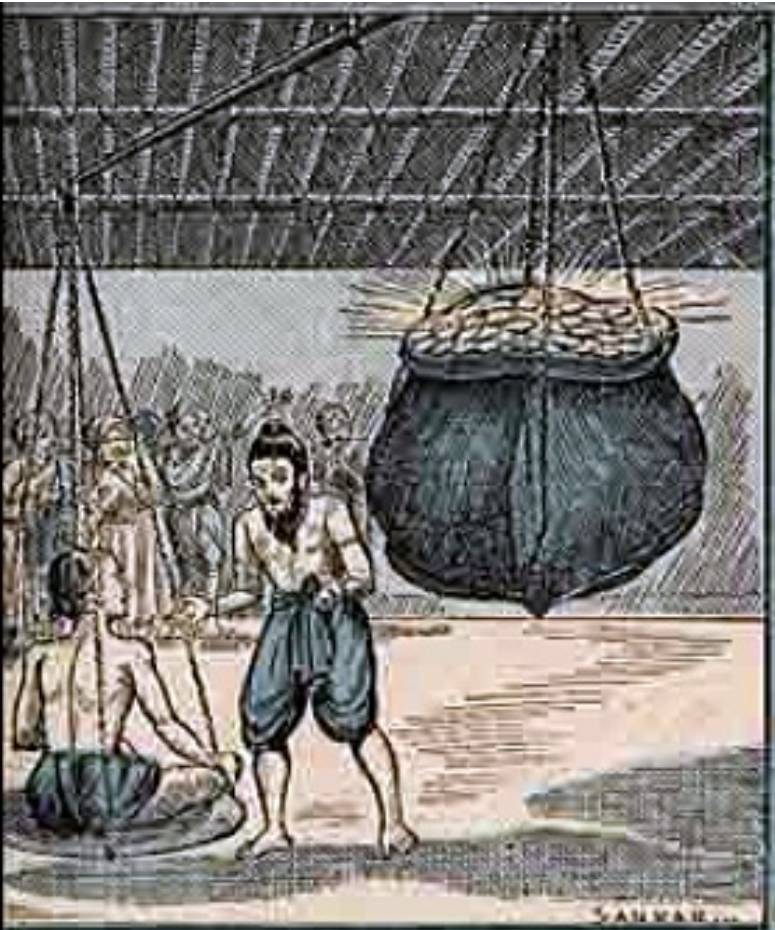
संन्यासी की आज्ञा से भगवान महतो काँटे के पलड़े पर जा बैठ। फिर संन्यासी ने उसे अपने पुण्य कार्य बताने का आदेश दिया। वैसे ही भगवान ने अपनी याद से बूढ़े की बात कही कि वहाँ जमा हुए सब लोग ठठा कर हँस पड़े।

लोगों को शान्त करके संन्यासी पलड़े पर रकम चढ़ाने लगा। चढ़ाता गया—चढ़ाता गया करीब बोरे-भर रुपया वह चढ़ा गया। लेकिन गरीब भगवान जिस पलड़े पर बैठा था, वह जरा भी नहीं झुका-ज्यों-का-त्यों तना रह गया। फिर संन्यासी बोरे-पर-बोरे पलड़े पर डालता गया, पर वह पलड़ा हठ करके खड़ा रहा! यह देख कर संन्यासी दंग रह गया। धर्मात्मा लोग चकित रह गए भगवान महतो तो मूढ़ ही बन गया था—समझ में कुछ भी नहीं आ रहा था।

संन्यासी के पास जो धन-राशि जमा थी, वह सब पलड़े पर चढ़ गई। यह देख कर उसने अत्यन्त नम्रता से कहा—'धर्मात्मा! तुमने जो पुण्य किया है, वह इतना महत्व-है, कि उसका कोई मोल नहीं हो सकता है। उस पुण्य का मोल चुकाना मेरे बूते के बाहर की बात हो गई है। मुझे क्षमा कर

दो। मेरे पास जो धन बच गया है, उसे ले जाओ और उतने से ही संतोष कर लो!'

यह सुन कर भगवान पलड़े पर से कूद पड़ा और हाथ जोड़ कर बोला 'महात्मा, क्या सचमुच मेरा पुण्य इतना बड़ा है! क्या वह इतना अनमोल भी है? तो मैं इस 'लाल' को कौड़ियों से नहीं बदलूंगा। आप अपना धन अपने पास रखिए और जो लेना चाहें, उन्हें दीजिए। मैं जाता हूं।'—कह कर वह चल पड़ा। वहां जो धनवान और पुण्यवान जमा थे सभी ने उस गरीब आदमी को देख कर दांतों तले जीभ दबा ली! और पुण्य खरीदने के लिए आए हुए उस संन्यासी के आश्चर्य का तो कोई ठिकाना ही नहीं था। वह जाते हुए भगवान के पास दौड़ गया और कहने लगा—'तुम पुण्यात्मा ही नहीं, महान त्यागी भी हो। आज तुमने जो यह अनुपम त्याग किया है, उससे तुम्हारा पुण्य दुगुना हो गया है। तुमने मेरे पास से कुछ नहीं लिया, लेकिन याद रखो—'किसी-न-किसी रूप में तुम्हारे पुण्य का फल तुम्हें मिल कर ही रहेगा। यह भगवान का फैसला है।'

कह कर वह संन्यासी अन्तर्धान हो गया।

कुछ दिन के बाद भगवान अपने घर पहुँचा। जाते ही उसने देखा कि उसका घर एक राज-महल के ऐश्वर्य से भरा-पूरा खिल-खिला रहा है। पूछने पर मालूम हुआ कि उसका निःसंतान लखपती चाचा मरते समय अपने दरिद्र, परन्तु धर्मात्मा भतीजे के नाम अपनी सारी सम्पत्ति लिख गया है। भगवान चकित रह गया। क्योंकि जो मक्खीचूस चाचा ताजिन्दगी उससे नफरत करता रहा, घोर-से-घोर संकट में भी कभी उलट कर उसकी तरफ देखा नहीं, उसका पत्थर से भी कड़ा दिल यों एकाएक कैसे पिघल पड़ा! फिर उसे संन्यासी की बात याद आ गई।

एक मुँह से अनेक मुँह बना लो

यह विचित्र तस्वीर तो देखो। इस में तुम तरह-तरह के अनगिनती मुँह बना सकते हो। वह कैसे— सो सुनो। पहले एक पतला कागज लेगो। फिर इस तस्वीर पर रख कर धीरे धीरे पेंसिल से घिसो। फिर रेखाओं को स्याही से भर दो। फिर उस पतले कागज को एक गत्ते पर साट दो।
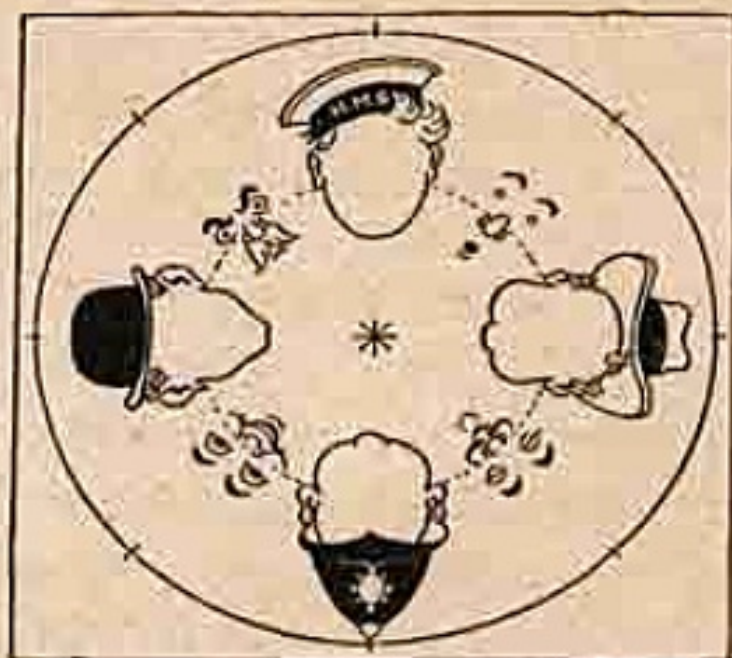
साटने में जरा होशियारी बरतो। पहले ही गत्ते में गोंद लगा दो। फिर उस पर कागज को ऐसे साटो जिससे कहीं सिकुड़न न रह जाय। खूब सूख जाने पर फिर एक पतला कागज लो और ठीक बीच के तारे पर एक पिन घुमेड़ दो। अब किसी टोपी पर कागज रख कर पेंसिल से घिसो और कागज को घुमाते जाओ। यों किसी मुँह से मुँह बना लो, किसी से आँखें घिस लो, किसी से नाक ले लो। इस तरह एक पूरा और बढ़िया मुँह बन जाएगा। एक-एक मुँह से एक-एक अंग लेने के कारण असली मुँह के साथ और भी अनेक नए-नए मुँह बन जाएँगे।

कुछ मुँहों से अगर मूँछें न लो, और टोपी में अगर कुछ पंख तथा दूसरे अलंकार बना दो, तो फिर देखो मेम साहबा की तस्वीर भी निकल आएगी।

इस करामात के लिए सब से बड़ी सावधानी रखनी चाहिए पिन लगाने में, जिस से पिन जरा भी हिले-डुले नहीं। पेंसिल काली और मुलायम लो और घिसते समय जोर से दबाकर मत घिसो।

रंगीन चित्र-कथा, पहला चित्र

एक गाँव में गंगू नाम का एक किसान रहता था। वह इतना भला आदमी था कि लोगों ने उसी के नाम पर उस गाँव का नाम गंगापुर रख दिया—

ऐसे नामी गंगू के घर एक पोता पैदा हुआ। प्यार और आचार से उसका नाम भी गंगू रखा गया। लेकिन उसने अपने नाम को सार्थक नहीं किया। बाबा जितना भला मानुस था, पोता उतना ही शरारती।

उसकी शरारतों को देख कर लोग उसे 'शरारती गंगू' कहने लग गए। बाबा अपनी कमाई से बनवा कर एक बड़ा मकान छोड़ गया था। बेटे के जमाने में वह परिवार छिन्न-भिन्न हो गया था। और पोते के समय में वह एकदम तहस-नहस हो गया।

उस मकान में गंगू और उसकी अनाथ माँ—ये दो ही जन रहते थे। कोई भी बात होती तो माँ अवसर जी खोल कर बेटे से कह देती थी। लेकिन जो परिवार इतने सुख-चैन से रहता आया था, वह आज इस हालत में क्यों पड़ गया है—इसके बारे में वह कभी मुँह नहीं खोलती थी। अपने पास की कोई-न-कोई वस्तु बेच कर वह घर का काम चलाती जाती थी। यों बेचते-बेचते घर की सभी चीज़ें खतम हो गईं और पैसे भी पूरे हो गए। बच गई थी एक दुधारी गाय। चूल्हे के नीचे-ऊपर रखने के लिए जब घर में कुछ भी नहीं रह गया, तब उसने गाय को भी बेच देने के लिए भेज दिया।

शरारती-गंगू गाय को लेकर शान के साथ हाट की ओर चला। रास्ते में एक बूढ़ा मिला और उसने गंगू से कुशल-प्रश्न पूछा—' गंगू ने सब बातें खोल कर बता दीं। यह सुन कर उस बूढ़े ने कहा—'इसके लिए तुम्हें हाट जाने की क्या जरूरत है - गाय मुझे दे दो। मैं एक मुट्ठी सेम का बीज तुमको देता हूँ। इससे तुम्हारा भाग्य खुल जाएगा। ले जाकर देखो तो सही।'

बूढ़े की बातों पर भरोसा करके शरारती-गंगू ने गाय उसे दे दी और एक मुट्ठी सेम का बीज लेकर अपने घर चला गया।

एक-रेखा-चित्र

एस. सी. के.

टाइप-राइटिङ्ग के चित्र

पी. पी. राव.
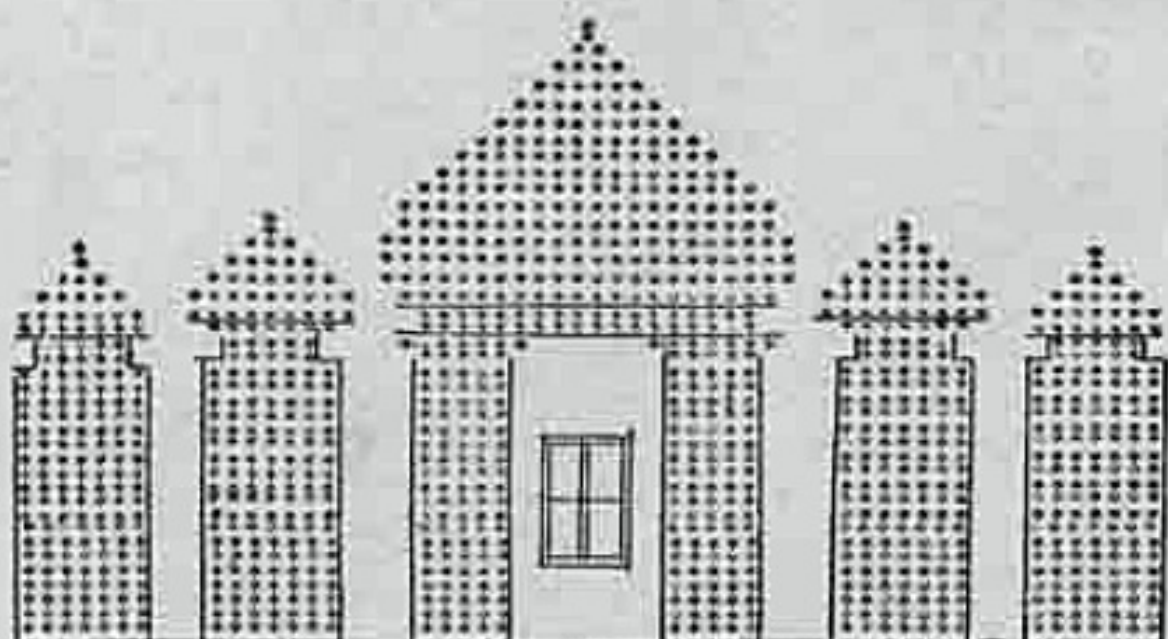
फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता

नवम्बर १९५३ :: पारितोषक १०)

कृपया परिचयोक्तियाँ कार्ड पर ही भेजें।

ऊपर के फोटो नवम्बर के अङ्क में छापे जाएँगे। इनके लिए उपयुक्त परिचयोक्तियाँ चाहिए। परिचयोक्तियाँ दो-तीन शब्द की हों और परस्पर-सम्बन्धित हों। परिचयोक्तियाँ, पूरे नाम और पते के साथ कार्ड पर ही लिख कर १० सितम्बर के अन्दर ही निम्न-लिखित पते पर भेजनी चाहिए।

फोटो - परिचयोक्ति - प्रतियोगिता
चन्दामामा प्रकाशन
वडपलनी :: मद्रास-२६.

अक्टूबर - प्रतियोगिता - फल

अक्टूबर के फोटो के लिए निम्नलिखित परिचयोक्तियाँ चुनी गई हैं। इनको प्रेषकों को १०) का पुरस्कार मिलेगा।

पहला फोटो : श्रम-प्रतीक दूसरा फोटो : धन-प्रतीक

प्रेषक :– सीताराम गाजीपुरिया, लाला जयसुखराय बाबू नन्दन प्रसाद, चन्दौसी, मुरादाबाद.

पुरस्कृत परिचयोक्तियाँ प्रेषक के नाम-सहित अक्टूबर के चन्दामामा में प्रकाशित होंगी। उक्त अङ्क के प्रकाशित होते ही पुरस्कार की रकम भेज दी जाएगी।

बताओ तो सही !

★

१. संसार में सबसे बेश कीमत धातु क्या है ?

२. शाखा-शून्य तीन पेड़ों का नाम बताओ ।

३. समुद्र में मगर क्यों नहीं पाए जाते ?

४. सबसे पहले संसार का मान-चित्र किसने बनाया था ?

५. चलने के समय बैल पहले कौनसा पैर उठाता है ?

६. कपड़े धोने वाला सोड़ा कैसे तैयार होता है ?

७. ऐटम-बम का आविष्कार किसने किया ?

८. एक पल में हम कितनी बार साँस लेते हैं ?

९. ओलिंपिक खेल सब से पहले किस देश में शुरू हुआ था ?

जवाब

१. रेडियम २. ताड़, खजूर, नारियल ३. नमकीन पानी में नहीं रह सकता ४. टाल्मी ५. बिछला ६. साधारण नमकसे ७. [illegible] ८. पचीस बार ९. ग्रीक लोग

‘पिचर’

★

देखो—यह एक विचित्र पौधा है। इसकी भूख बड़ी तेज़ होती है। जड़ों से रस खींचने के अलावा यह मांस भी खाता है। उसके लिए पौधे में भी व्यवस्था बनी हुई है। तस्वीर को देखो। प्रत्येक पत्ते में एक लम्बी सोंक लटकती रहती है।

हर सींक में एक छोटी थैली-सी पाई जाती है। हर थैली में एक ढक्कन भी डोलता रहता है। जैसे ही कोई भुनगा थैली पर पड़ा कि ढक्कन उस पर बैठ गया। फिर भुनगा बाहर नहीं निकल सकता। इस तरह यह ‘पिचर’ पेड़ भुनगों को निगलता रहता है। ये पेड़ हमारे देश में और अमेरिका में भी पाए जाते हैं।

Printed by B. NAGI REDDI at the B. N. K. Press Ltd., Madras 26, and Published by him for Chandamama Publications, Madras 26, Controlling Editor: SRI CHAKRAPANI.

Photo by A. L. Syed
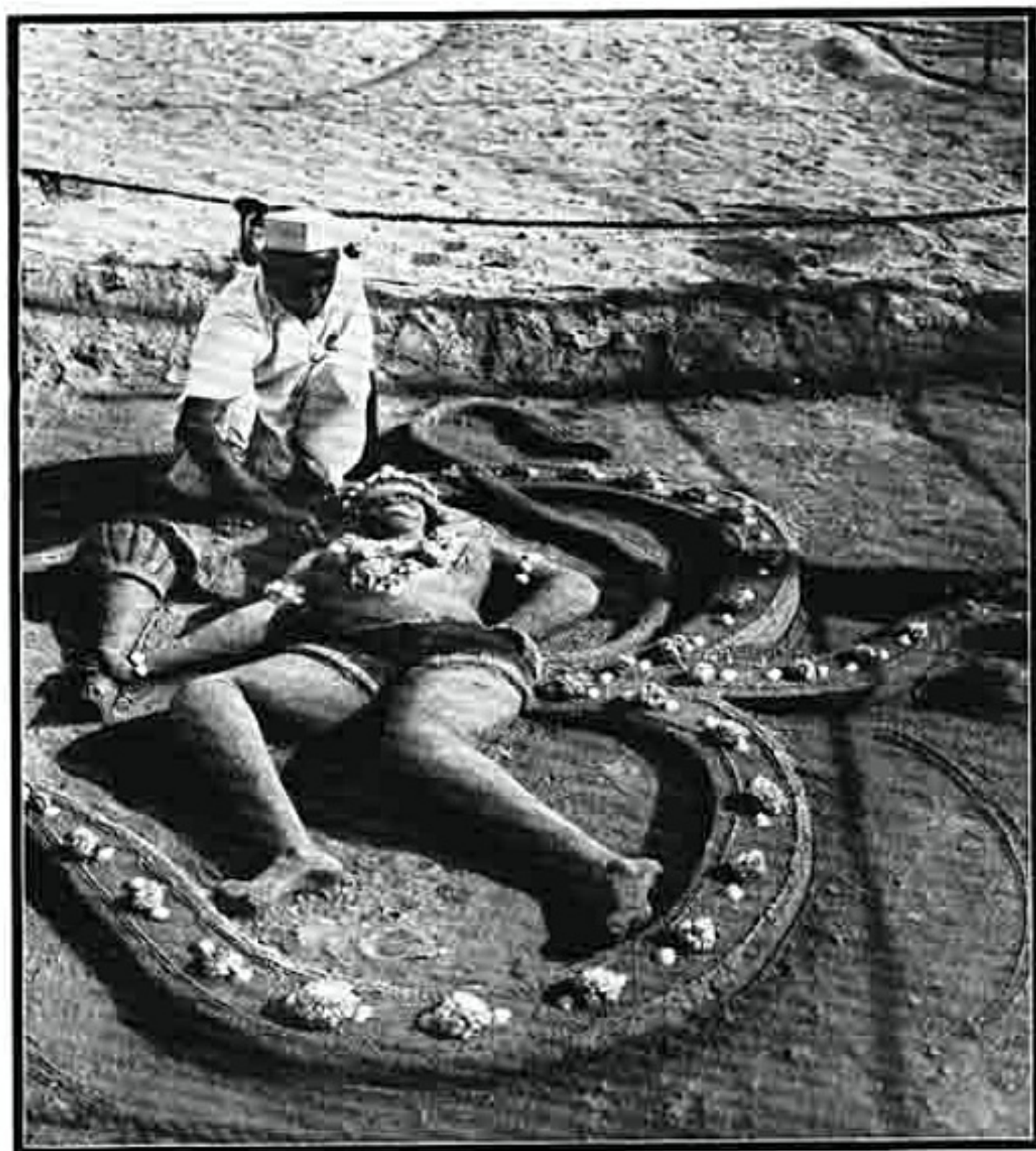
पुरस्कृत
परिचयोक्ति

वज्रदेही

प्रेषक
स. द. पर्वतीकर, हैद्राबाद

रङ्गीन चित्र-कथा, चित्र–१